श्री आनंदघन चोवीशी सार्थ

संपादक : मुनि श्री जयानंदविजयजी

विवेचन :

राजेन्द्रकुमार किशोरमलजी बोहरा

।। णमो वद्धमाणस्स ।।

।। प्रभु श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरिगुरुभ्यो नमः ।।

श्री आनंदघन चोवीशी सार्थ

: दिव्याशीष :

श्री विद्याचंद्रसूरीश्वरजी

मुनिराज श्री रामचंद्रविजयजी

: विवेचन :

राजेन्द्रकुमार किशोरमलजी वोहरा

: संपादक :

मुनि श्री जयानंदविजयजी

: मुख्य संरक्षक :

(१) श्री संभवनाथ राजेन्द्रसूरिश्वे. मू. ट्रस्ट

कडुलावारी स्ट्रीट, विजयवाडा.

(२) मुनिराज श्री जयानंद विजयजी आदि ठाणा की निश्रा में

वि. २०६५में शत्रुंजय तीर्थे चातुर्मास एवं उपधान करवाया उस निमित्ते

लेहर कुंदन ग्रुप

मुंबई, दिल्ली, चेन्नई, हरियाणा,

श्रीमती गेरीदेवी जेठमलजी बालगोता परिवार मेंगलवा.

(३) एक सद्गृहस्थ - भीनमाल

भूमिका

आत्मा के विकासक्रम का सुन्दरातिसुंदर निरूपण श्री सिद्धर्षिगणि ने 'उपमितिभव प्रपंच कथा' में दर्शाया है। वह ग्रंथ महाकाय ग्रंथ है। उसे साधारण व्यक्ति नहीं समझ सकता। अतः उसके आधार से उपमिति भव प्रपंच सारोद्धार की रचना भी हुई। वह भी सहज समझ से परे रही।

पूज्यपाद श्री आनन्दघनजी ने प्रभु भक्ति से प्रेरित होकर प्रभु की स्तवना के माध्यम से स्तवनों की रचना करते हुए आत्मा के विकास क्रम का स्वरूप संक्षेप में दर्शाया।

इन स्तवनों में गूढ़ार्थ शब्दों का प्रयोग होने से इनके अंदर रहे हुए रहस्य को समझने हेतु श्री बुद्धिसागरसूरिजी ने, पंडित प्रभुदास बेचरदास पारेख ने विस्तारपूर्वक विवेचन किया है।

उसी के आधार से राजेन्द्रकुमार बोहरा ने प्रभुदास बेचरदास पारेख के अर्थ को सामने रखकर अपनी लेखनी से संक्षेप में अर्थ अतीव सुंदर रीति से किया है।

पाठक लाभान्वित बनें यही...

जयानंद

२०६२ पोष सुदि सप्तमी
राजेन्द्रसूरि शताब्दि वर्ष प्रारंभ
पुष्पांक २

द्वितियावृति संवत २०६८
शंखेश्वर माहा सुदि ७

प्रथमावृति

दो शब्द

जीव के कुछ कर्म ज्ञान बल से नाश होते हैं, कुछ कर्म आचरण से नाश होते हैं। अतः मुक्ति मार्ग के साधक को ऐसे कर्मों का नाश करने के लिए आचरण की आवश्यकता होती है।

प्राथमिक क्रम अनुसार व्यवहार नय सिद्ध आचरण तत्पश्चात् निश्चय नय सिद्ध आचरण का आता है। इस स्थिति में व्यवहार नय की क्रियाएँ छोड़ने योग्य होती हैं। इस स्थिति को 'धर्म सन्यास सामर्थ्य योग' कहते हैं। यह आठवें अपूर्व करण गुण स्थानक से प्राप्त होता है।

किसी भी दूकान पर प्रत्येक ग्राहक प्रत्येक माल का खरीददार नहीं होता है., पर व्यापारी को तो समस्त प्रकार के ग्राहकों के हेतु माल रखना पड़ता है। उसी प्रकार धर्म शासन में अलग अलग कक्षाओं के धर्मनिष्ट जीवों के लिए आत्म विकास के समस्त साधनों की सुविधा रखनी पड़ती है।

चरम पुद्गल परावर्तन में प्रवेश किये हुए जिन आत्माओं में धर्म का बीजारोपण हुआ है, वैसे जीवों की आत्मिक अवस्था, सहज कर्त्तव्य उसी स्थिति में रहते हुए आगे बढ़ सके, वैसे उपदेश व उससे सम्बन्धित विवरण धर्मशास्त्रों में होना ही चाहिए। मार्गानुसारी जीवन, सम्यक्त्व प्राप्ति, देश विरति, प्रमत्त सर्व विरति, अप्रमत्त सर्वविरति, अनासक्त योग, निर्विकल्प समाधिनिष्ठ श्रेणि प्राप्त, उपशांत मोही, क्षीण मोही, सयोगी, अयोगी विगेरे अलग अलग पदों पर स्थित आत्माओं की अलग अलग अवस्था व कर्त्तव्य भी शास्त्रों में विस्तार से होने ही चाहिए।

उस अवस्था में उच्च कक्षा के जीवों से सम्बन्धित धर्म ग्रन्थ नीचे की कक्षा के आचरण को निम्न बतावें, यह स्वाभाविक है। किन्तु परस्पर विरोधी नहीं है।

जैन धर्मानुसार सर्व विरति धारी मुनि जिन पूजा नहीं करे। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि अन्य पात्र भी जिन पूजा नहीं करें, या जिन पूजा अनुचित है।

उपर की कक्षा में प्राथमिक कक्षाओं से सम्बन्धित क्रियाएँ छोड़ने योग्य होती है, यह स्वाभाविक है।

इस बात को प्रभु भक्ति के माध्यम से अच्छी प्रकार समझायी गयी है।

स्तवनकार श्री आनन्दघनजी की विशेषता है कि आत्मा के विकास मार्ग के प्रतिपादन के साथ साथ जगत के दूसरे पदार्थों के संबंध में भी संक्षेप में सूचना दी जाती रही है।

इसका विस्तृत विवेचन श्री प्रभुदास बेचरदास पारेख ने अतिविस्तारपूर्वक समझाया है। उसी के आधार से यह विवेचन संक्षेप रुचि जीवों के लिए मेरे सामान्य क्षयोपशमानुसार किया है। सुज्ञजन त्रूटियों की ओर लक्ष्य देने के स्वभाववाले ही नहीं होते फिर भी कहीं त्रूटी नजर आये तो सूचित करने की कृपा करावें।

मेरे पूज्य पिताजी श्री हस्तीमलजी की भावना थी कि आनंदघन चौवीशी के सरल भाषा में एक अर्थ की पुस्तक छपवायी जाय। उनकी भावनानुसार यह कार्य पूर्ण किया है।

जिनाज्ञा विरुद्ध लिखा गया हो तो मिच्छा मि दुक्कडं।

राजेन्द्रसूरि शताब्दि
वर्ष प्रारंभ

राजेन्द्रकुमार किशोरमलजी वोरा
जालोर

संरक्षक

१. सुमेरमल केवलजी नाहर, भीनमाल, राज. के. एस. नाहर,
२०१ सुमेर टॉवर्स, लवलेन, मझगाँव, मुम्बई-१०.
२. मीलियन ग्रुप, सूराणा, राज. मुंबई, दिल्ली, विजयवाडा
३. एम.आर. इम्पेक्स, १६-ए हनुमान टेरेस, दूसरा माला, तारा टेम्पल लेन
लेमीग्टन रोड, मुंबई-७. फोन- २३८० १०८६.
४. श्री शांतिदेवी बाबुलालजी बाफना चेरीटेबल ट्रस्ट, मुंबई,
महाविदेह भीनमालधाम, पालीताना, ३६४२७०
५. संघवी जुगराज, कांतिलाल, महेन्द्र, सुरेन्द्र, दिलीप, धीरज, संदीप, राज, जैनम,
अक्षत बेटा पोता कुंदनमलजी भुताजी श्री श्रीमाळ वर्धमान गौत्रीय आहोर (राज.)
कल्पतरु ज्वेलर्स, ३०५ स्टेशन रोड, संघवी भवन, थाना, (५) महाराष्ट्र
६. विजुबेन चिमनलाल, शांतिभाई डाहयालाल, मोंघीबेन अमृतलाल दोशी के
स्मरणार्थे अनीलभाई, निकिताबेन ए, नैनाबेन डी, शिल्पाबेन एन के मासक्षमण
एवं दीपकभाई, निलांगभाई, नैनाबेन, भव्याकुमारी के वर्षीतप अनुमोदनार्थे
अमृतलाल चिमनलाल दोशी पांचशो वोरा परिवार, थराद (मुम्बई)।
७. शत्रुंजय तीर्थे नव्वाणुं यात्रा के आयोजन निमित्ते शा. जेठमल,
लक्ष्मणराज, पृथ्वीराज, प्रेमचन्द, गौतमचंद, गणपतराज, ललीतकुमार,
विक्रमकुमार, पुष्पक, विमल, प्रदीप, चिराग, नितेष बेटा-पोता
कीनाजी संकलेचा परिवार मेंगलवा, फर्म-अरिहन्त नोवेल्हटी,
जी.एफ-३ आरती शोपींग सेन्टर, कालुपुर टंकशाला रोड, अहमदाबाद.
८. थराद निवासी भणशाळी मधुबेन कांतिलाल अमुलख भाई परिवार
९. शा कांतिलाल केवलजी गांधी सियाना निवासी द्वारा २०६२ में
पालीताना में उपधान करवाया उस निमित्ते।
१०. लहेर कुंद ग्रुप, शा जेठमलजी कुंदनमलजी मेंगलवा (जालोर)
११. २०६३ में चातुर्मास एवं उपधान करवाया उस समय पद्मावती सुनाने के उपलक्ष
में शा चंपालाल, जयंतिलाल, सुरेशकुमार, भरतकुमार प्रिन्केश, केनित,
दर्शित, चुन्नीलालजी मकाजी कासम गौत्र त्वर परिवार गुड़ा बालोतान्
'जय चिंतामणी' १०-५४३ संतापेट नेल्लूर (आ.प्र.)
१२. पू. पिताश्री पूनमचंदजी मातुश्री भुरीबाई के स्मरणार्थे पुत्र पुखराज, पुत्रवधु लीलाबाई
पौत्र फुटरमल, महेन्द्रकुमार, राजेन्द्रकुमार अशोक कुमार, मिथुन, संकेश, सोमील,
बेटा पोता परपोता शा पूनमचंदजी भीमाजी रामाणी गुडाबालोतान्
नाकोडा गोल्ड, ७० कंसारा चाल, बीजा माले रुम नं. ६७, कालबादेवी मुंबई
१३. शा सुमेरमल, मुकेशकुमार, नितीन, अमीत, मनीषा, खुशबु बेटा पोता
पेराजमलजी प्रतापजी रतनपुरा बोहरा परिवार, मोदरा (राज.)
राजरतन गोल्ड प्रोड., के.वी.एस. कोम्पलेक्ष, ३/१ अरुंडलपेट, गुन्टूर.
१४. एक सद् गृहस्थ, धाणसा

१५. गुलाबचंद डॉ.राजकुमार, निखिलकुमार बेटा पोता परपोता छगनलालजी प्रेमाजी कोठारी अमेरीका, आहोर (राज.) ४३४१ स्कैलेन्ड ड्रीव, अट्लांटा, जोर्जीया, U.S.A-30342. Ph.: 404-432-3086, 678-521-1150

१६. शांतिरुपचंद रवीन्द्रचंद्र, मुकेश, संजेश, ऋषभ, लक्षित, यश, ध्रुव, अक्षय बेटा पोता मिलापचंदजी मेहता, जालोर-बेंगलोर.

१७. वि. सं. २०६३ में आहोर में उपधान तप आराधना करवायी एवं पद्मावती श्रवण के उपलक्ष में पिताश्री थानमलजी मातुश्री सुखीदेवी, भंवरलाल, घेवरचंद, शांतिलाल, प्रवीणकुमार, मनीष, निखिल, मित्तुल,आशीष, हर्ष, विनय, विवेक बेटा पोता कनाजी हकमाजीमुथा शा. शांतिलाल प्रवीणकुमार एण्ड को. राम गोपाल स्टीट,विजयवाडा

१८. बाफना वाडी में जिन मन्दिर निर्माण के उपलक्ष में मातुश्री प्रकाशदेवी चंपालालजी की भावनानुसार पृथ्वीराज, जितेन्द्रकुमार, राजेशकुमार, रमेशकुमार, वंश, जैनम, राजवीर, बेटा-पोता चंपालालज सांवलचन्दजी बाफना, भीनमाल. नवकार टाइम, ५९,नाकोडा स्टेट न्यू बोहरा बिल्डींग, मुंबई - ३.

१९. शा शांतिलाल, दीलीपकुमार, संजयकुमार, अमनकुमार, अखीलकुमार बेटा पोता मूलचंदजी उमाजी तलावत आहोर (राज.) राजेन्द्र मार्केटींग, पो.बो. नं. १०८. विजयवाडा.

२०. श्रीमती सकुदेवी सांकलचंदजी नेथीजी हुकमाणी परिवार, पांथेडी, राज. राजेन्द्र ज्वेलर्स, ४ रहेमान भाई बि.एस.जी. मार्ग, ताडदेव, मुंबई-३४.

२१. पुज्य पिताजी श्री सुमेरमलजी की स्मृति में मातुश्री जेठीबाई की प्रेरणा से जयन्तिलाल, महावीरचंद, दर्शनकुमार, बेटा-पोता सुमेरमल वरदीचंदजी वाणीगोता परिवार आहोर, चेन्नई । जे.जी. इम्पेक्स प्रा. लि. ५५ नारायण मुदली स्ट्रीट चेन्नई - ७९.

२२. स्व. हस्तीमलजी भलाजी नागोत्रा सोलंकी स्मृति में हस्ते परिवार बाकरा(राज.)

२३. मु.श्री जयानंद विजयजी आदि की निश्रा में चातुर्मास एवं उपधान शत्रुंजय तीर्थे करवाया लहेर कुंदन ग्रुप श्रीमती गेरोदेवी जेठमलजी बालगोता परिवार मेंगलवावासी ने उस समय आराधक एवं भक्त जनों की साधारण की राशी में से सवंत २०६५.

२४. मातुश्री मोहनीदेवी पिताश्री सोवलचन्दजी कि पुण्य स्मृति में शा. पारसमल, सुरेशकुमार, दिनेशकुमार, कैलाशकुमार, जयंतकुमार, बिलेष, श्रीकेष, दिक्षित, प्रीष, कबीर, बेटा-पोता सोवलचन्दजी कुंदनमलजी मेंगलवा (राज.) फर्म: फाईब्रोस कुंदन ग्रुप, ३५ पेरुमाल मुदाली स्ट्रीट, साहुकारपेट, चेन्नई

२५. शा. सुमेरमलजी नरसाजी - मेंगलवा, मेटल एण्ड मेटल, नं. १३६, गोविन्दापा नायकन स्ट्रीट, चेन्नई.

२६. शा दूधमल, नरेन्द्रकुमार,रमेशकुमार बेटा बोता लालचंदजी मांडोत परिवार बाकरा (राज.)मंगल आर्ट, दोशी बिल्डींग ३-भोईवाडा,भूलेश्वर,मुंबई २

२७. कटारीया संघवी लालचंद, रमेशकुमार, गोतमचंद, दिनेशकुमार,
महेन्द्रकुमार, रवीन्द्रकुमार बेटा पोता सोनाजी भेराजी धाणसा (राज.)
श्री सुपर स्पेअर्स, ११-३२-३ए पार्क रोड, विजयवाडा, सिकन्द्रबाद.

२८. शा नरपतराज, ललीतकुमार महेन्द्र, शैलेष, निलेष, कल्पेश, राजेश, महीपाल,
दिक्षीत, आशीष, केतन, अश्वीन, सींकेश, यश बेटा पोता खीमराजजी थानाजी
कटारीया संघवी आहोर (राज.) कलांजली ज्वेलर्स, ४/२, ब्राडी पेठ, गुन्टूर-२.

२९. शा लक्ष्मीचंद, शेषमल, राजकुमार, महावीरकुमार, प्रवीणकुमार, दीलीपकुमार,
रमेशकुमार बेटा पोता प्रतापचंदजी कालुजी कांकरीया, मोदरा (राज.) गुन्टूर.

३०. एक सद्गृहस्थ (खाचरौद)

३१. श्रीमती सुआदेवी घेवरचंदजी के उपधान निमित्ते चंपालाल, दिनेशकुमार,
धर्मेन्द्रकुमार, हितेशकुमार, दिलीप, रोशन, नीखील, हर्ष, जैनम, दिवेश
बेटा पोता घेवरचंदजी सरेमलजी दुर्गाणी बाकरा. हितेन्द्र मार्केटींग, 11-X-1
काशी चेटी लेन, सत्तर शाला कोम्प्लेक्स, पहला माला, चेन्नई-८९.

३२. मंजुलाबेन प्रवीणकुमार पटीयात के मासक्षमण एवं स्व. श्री मंवरलालजी की
स्मृति में प्रवीणमुकार, जीतेशकुमार, चेतन, चिराग, कुणाल, बेटा पोता
तिलोकचंदजी धर्माजी पटियात धाणसा - मुंबई
पी.टी. जैन, रोयल सम्राट, ४०६-सी वींग, गोरेगांव (वेस्ट) मुंबई-६२.

३३. गोल्ड मेडल इन्डस्ट्रीस प्रा. ली., रेवतडा, मुम्बई, विजयवाडा, दिल्ली
जुगराज ओटमलजी, ए ३०१/३०२, वास्तु पार्क, मलाड (वे), मुंबई.

३४. राज राजेन्द्रा टेक्सटाईल्स एक्सपोर्टस लिमीटेड १०१, राजभवन,
दौलतनगर, बोरीवली (ईस्ट), मुम्बई, मोधरा निवासी.

३५. प्र.शा.दी.सा.श्री मुक्ति श्रीजी की शिष्या वि.सा. श्री मुक्तिसर्शिता श्रीजी की
प्रेरणा से स्व. पिताजी दानमलजी, मातुश्री तीजोदेवी की पुण्य स्मृति में
चंपालाल, मोहनलाल, महेन्द्रकुमार, मनोजकुमार, जितेन्द्रकुमार,
विकासकुमार, रविकुमार, रिषभ, मिलन, हितिक, आहोर (राज.)
कोठारी मार्केटींग १०/११, चितुरी कोम्प्लेक्ष, विजयवाडा-१.

३६. पिताजी श्री सोनराजजी, मातुश्री मदनबाई कटारिया संघवी परिवार आयोजित
सम्मेत शिखर यात्रा प्रवास एवं जीवित महोत्सव निमित्ते दीपचंद,उत्तमचंद,
अशोककुमार, प्रकाशकुमार, राजेशकुमार, संजयकुमार, विजयकुमार, बेटा-पोता
सोनराजजी मेघाजी-धाणसा - पुना. अलका स्टील, ८५८, भवानी पेठ, पुना-५२

३७. मु. श्री जयानंद विजयज़ी आदि ठाणा की निश्रा में २०६२ में पालीताणा में चातुर्मास
एवं उपधान करवाया उस निमित्ते श्रीमती हंजादेवी सुमेरमलजी नागोरी,
शांतिलाल, बाबुलाल, मोहनलाल, अशोककुमार, विजयकुमार आहोर/बेंगलोर

३८. मु.श्री जयानंद विजयजी आदि ठाणा की निश्रा में २०६६ में तीर्थेन्द्र नगर
बाकरारोड में चातुर्मास एवं उपधान करवाया उस निमीत्ते श्रीमती मेतीदेवी
पेराजमलजी, रतनपुरा बोहरा परिवार मोधरा/गुंटूर.

३९. संघवी कान्तीलाल, जयंतीलाल, राजकुमार, राहुलकुमार एवं
समस्थ श्री श्री श्रीमाल गुडाल गोत्र फुआनी परिवार आलासण (राज)
संघवी इलेक्ट्रीक कंपनी ८५, नारायण मुदाली स्ट्रीट, चेन्नई - ७९.

४०. संघवी भंवरलाल, मांगीलाल, महावीर, नीलेश, बन्टी बेटा- पोता
हरकचंदजी श्री श्रीमाल परिवार, आलासन
राजेश इलेक्ट्रीकल्स, ४८ राजा बिल्डींग, तिरुनेलवेली -६२७००१.

४१. शा. कान्तीलालजी मंगलचन्दजी हरण, दाँसपा, सी १०३/१०४,
वास्तु पार्क, एवर साइन नगर, मलाड (वे), मुंबई-६४.

४२. शा. भंवरलाल, सुरेशकुमार, शैलेषकुमार, राहुल बेटा - पोता
तेजराजजी संघवी कोमतावाला भीनमाल (राज).
राजरतन इलेकट्रीकल्स, के.सी.आई.वायर्स प्रा.लि.
१६२, गोवीन्दाप्पा नायकन स्ट्रीट, चेन्नाई - ६०० ००१.

४३. शा समरथमल, सुकराज, मोहनलाल महावीरकुमार, विकासकुमार,
कमलेश, अनिल, विमल, श्रीपाल, भरत फोला मुथा परिवार सायला (राज.)
अरुण एन्टरप्राईजेस, ४ लेन, ब्राडी पेठ, गुन्टूर-२.

४४. शा.गजराज,बाबुलाल,मीठालाल,भरत,महेन्द्र,मुकेश,शैलेष,गौतम,
नीखील, मनीष, हनी बेटा पोता, रतनचंदजी, नागोत्रा सोलंकी साँथू (राज)
फूलचंद भंवरलाल, १०८ गोवींदप्पा नायक स्ट्रीट, चेन्नई-१.

४५. भंसाली भंवरलाल, अशोकुमार,कांतिलाल,गोतमचंद, राजेशकुमार, राहुल,
आशीष, नमन, आकाश, योगेश, बेटा पोता लीलाजी कसनाजी मु. सरत.
मंगल मोती सेन्डीकेट, १४/१५ एस. एस. जैन मार्केट,
एम.पी. लेन चीकपेट क्रोस, बेंगलोर - ५३.

४६. बल्लु गगलदास वीरचंदभाई परिवार थराद / मुंबई.

४७. श्रीमती मंजुलादेवी भोगीलाल वेलचन्द संघवी धानेरा
फेन्सी डाइमण्ड ११, श्रीजी आरकाड, प्रसाद चेम्बर्स नी पाछल
टाटा रोड, नं. १-२, ओपेरा हाउस, मुंबई-४.

४८. देसाइ शांतिलाल, उत्तमचन्द, विनोदभाई, धीरजभाई, सेवंतिभाई, थराद-मुंबई

४९. बन्दामुथा शांतिलाल, ललितकुमार, धर्मेश, मितेश बेटा पोता मेघराजजी फूसाजी
नं. ४३, आइदाप्पा, नामकन स्ट्रीट साहुकारपेट, चेन्नई-७९.

५०. श्रीमतीबदामीदेवी दीपचन्दजी गेनाजी मांडवला (राज.)
चेन्नई निवासी के प्रथम उपधान तप निमीते हस्ते सह परिवार

५१. आहोर से आबू देलवाडा तीर्थ का ६ रि पालित संघ निमीत्ते एवं सुपुत्र महेंद्रकुमार की स्मृति में संघवी मुथा मेघराज, कैलाशकुमार, राजेशकुमार, प्रकाशकुमार, दिनेशकुमार, कुमारपाल, करण, शुभम, मिलन, मेहुल, मानव, बेटा-पोता सुगालचन्दजी लालचन्दजी लुंकड परिवार, आहोर (राज.) फर्म: मैसुर पेपर सप्लायर्स नं ५, श्रीनाथ बिल्डींग, सुलतानपेट सर्कल, बेंगलोर-५३.

५२. एक सदग्रहस्थ, बाकरा (राज.)

५३. स्व. पिताश्री हिराचंदजी स्व. मातृश्री कुसुमबाई स्व. ज्येष्ठ भ्राताश्री पृथ्वीराजजी, श्री तेजराजजी के आत्मश्रेयार्थे मुथा चुन्निलाल, चन्द्रकुमार, किशोरकुमार, पारसमल, प्रकाशकुमार, जितेन्द्रकुमार, दिनेशकुमार, विकाशकुमार, कमलेश, राकेश, सन्नि, अशिष, नीलेश, अंकुश, पुनीत, अभिषेक, मोन्टु, नितिन, आतिश, निल, महावीर, जैनंम, परम, तनमै, प्रनै , बेटा पोता परपोता लडपोता हिराचन्दजी चमनाजी दांतेवाडिया परिवार, मरुधर मे आहोर (राज.) हीरा नोवेल्टीस, फ्लवर स्ट्रीट, बल्लारी

५४. थराद निवासी मुमुक्षु दिनेश भाई हालचन्द भाई अदाणी ना दीक्षा निमिते आवेल बहुमान नी राशी मां थी हस्ते हालचन्द भाई वीरचन्दभाई अदाणी एवं समस्त परिवार

५५. माईनॉक्स मेट्रल प्रा.लि. नं. ७, पी.सी लेन, एस.पी रोड क्रॉस, बेंगलोर-मरुधर मे सायला (राज) बेंगलोर, मुम्बई, चेन्नई, अहमदाबाद

५६. श्रीमती प्यारी देवी भेरमलजी जेठाजी श्री श्री श्रीमाल अग्नीगोता परिवार अमरसर (सरत) राज. बाकरा रोड में चातुर्मास एवं उपधान तप निमिते हस्ते संघवी भवरलाल, अमीचन्द, अशोककुमार, दिनेशकुमार। फर्म: अम्बीका ग्रूप, विजयवाडा (ए.पी)

: सह संरक्षक :

१. शा तीलोकचंद मयाचंद एन्ड कं. ११६, गुलालवाडी, मुंबई - ४.

२. स्व. मातृश्री मोहनदेवी पिताजी श्री गुमानमलजी की स्मृति में पुत्र कांतिलाल जयन्तिलाल, सुरेश, राजेश सोलंकी जालोर प्रविण एण्ड कं. १५-८-११०/२, बेगम बाजार, हैदराबाद - १२.

३. श्रीमती फेन्सी बेन - सुखराजजी चमनाजी कबदी धाणसा, गोल्डन ग्रूप, ३ - भोईवाडा, भूलेश्वर, मुंबई २

४. मेहता सुबोधभाई उत्तमलाल, धानेरा / कोलकत्ता

५. पूज्य पिताजी ओटमलजी एवं मातृश्री अतीयो बाई एवं धर्मपत्नि पवनी देवी के आत्म श्रेयार्थ किशोरमल, प्रवीणकुमार (राजु), अनिल, विकास, राहुल, संयम, ऋषभ, डोसी चौपडा परिवार, आहोर फर्म : श्री राजेन्द्र स्टील हाउस- गुंटूर- ए.पी

६. पूज्य पिताजी शा प्रेमचन्दजी छोगाजी कि स्मृति में मातुश्री पुष्पादेवी सुपुत्र दिलीप, सुरेश, अशोक, संजय वेदमुथा, रेवतडा (राज.) श्री राजेंद्र टॉवर्स, नं १३, समुद्र मुदाली स्ट्रीट, चेन्नई

७. गाँधी मुथा स्व. मातृश्री पानीबाई एवं पुज्य पिताश्री पुखराजजी की स्मृती में पुत्र गोरमल, भागचन्द, निलेश, महावीर, वीकेन, मिथुन, रिषभ, योनिक बेटा पोता पुखराजजी समनाजी गेनाजी सायला (राज.) फर्म : वैभव ए टू जेड डॉलर शॉप, वास्वी महल रोड, चित्रदुर्गा ५७७ ५०१. कर्नाटका

८. शांतीदेवी मोहनलालजी के उपधान वर्षीतप आदि तपश्चर्या निमिते हस्ते मोहनलाल, विकास, राकेश, धन्या बेटा पोता गणपतचन्दजी सोलंकी, जालोर (राज.) फर्म : शांती इम्पोर्ट्स ११-५४-४२ नंदी पाटीवारी स्ट्रीट, विजयवाडा (ए.पी)

९. पूज्य पिताजी मनोहरमलजी के आत्म श्रेयार्थे मातृश्री पानीदेवी के उपधान तप निमिते हस्ते सुरेशकुमार, दिलीपकुमार, मुकेशकुमार, ललितकुमार श्री श्री श्रीमाल गुडाल गोत्र नेथाजी परिवार, आलासन (राज.) फर्म : एम.के लाईट्स, ८९७ अविनाशी रोड, कोईम्बटूर ६४१ ०१८.

१०. स्व. पूज्य पिताजी श्री मानमलजी भीमाजी क्षत्रिया बोहरा कि स्मृति में हस्ते मातृश्री सुआबाई सुपुत्र मदनराज, महेन्द्रकुमार, भरतकुमार, नितिन, स्लोक, सयंम, दर्शन एवं समस्त क्षत्रिया बोहरा परिवार, सुराणा (राज.) कोईमबटूर/मुम्बई।

प्राप्ति स्थान

श्री आदिनाथ राजेन्द्र जैन पेढी
सांथू - 343 026
जिला : जालोर (राज.)
फोन : 02973 - 254 221

महाविदेह भीनमाल धाम
तलेटी हस्तिगिरि, लिंक रोड,
पालीताणा - 364 270
फोन : (02848) 243 018

शा. देवीचंद छगनलालजी
सुमति दर्शन, नेहरू पार्क के सामने,
माघ कोलोनी, भीनमल-343 029 (राज)
फोन : (02969) 220 387

श्री विमलनाथ जैन पेढी
बाकरा गाँव- 343 025 (राज.)
फोन : 02973 - 251 122
/ 94134 65068

श्री तीर्थेन्द्र सूरि स्मारक संघ ट्रस्ट
तीर्थेन्द्र नगर, बाकरा रोड - 343 025
जिला-जालोर (राजस्थान)
फोन : 02973 251 144

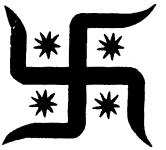

द्रव्य सहायक

स्व. श्री हस्तीमलजी
स्व. श्री किशोरमलजी
स्व. श्रीमति भमरीदेवी बोहरा
की स्मृती में

श्रीमति बगसुदेवी हस्तीमलजी बोहरा परिवार
निवासी जालोर (राज.)

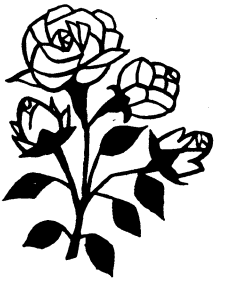

श्री आदिनाथाय नमः

प्रभु श्री राजेन्द्रसूरीश्वराय नमः

१. श्री ऋषभ देव जिन स्तवन

जब आत्मा तथा-भव्यता के योग से चरमावर्त में प्रवेश करती है तब मुक्ति की चाहना प्रारम्भ होती है। सहज-स्वभाव से संसार की ओर उद्विग्नता होती है, तथा देव, गुरु व धर्म की तरफ प्रेमभाव, भक्तिभाव प्रारम्भ होता है। ऐसा इस स्तवन में दर्शाया है।

मूल : ऋषभ जिनेश्वर प्रीतम माहरो रे, और न चाहूँ रे कंत।
रीज्यो साहिब संग न परिहरे रे,
भांगे सादि अनन्त ॥ऋषभ०॥१॥

शब्दार्थ : प्रीतम-प्रियतम, पति, प्रेमी, और-दूसरा, कंत-कान्त, पति, रीज्यो-रीझा हुआ, खुश हुआ, साहिब-स्वामी, संग-साथ, संबंध, परिहरे-त्याग करना, छोड़ना, भांगे-विकल्प से, भेद से, प्रकार से, सादि-स+आदि, प्रारम्भ सहित, अनन्त-अन्त रहित।

भावार्थ : मुक्ति की कामनावाले जीव को सुमति (सहज विवेक-बुद्धि) कहती है, कि ऋषभ जिनेश्वर मेरे प्यारे से प्यारे प्रियतम हैं। मैं इनके अलावा और किसी को भी प्रियतम रूप में नहीं चाहती हूँ। क्योंकि संसार के समस्त नश्वर संबंधों की तुलना में यह मेरा ऐसा स्वामी है जो कि इस संबंध को कभी नहीं त्यागता है। अर्थात् यह संबंध प्रारम्भ सहित किन्तु अन्त रहित है।

मूल : प्रीत सगाई रे जगमां सहु करे रे, प्रीत-सगाई न कोय।
प्रीत सगाई रे निरुपाधिक कही,
सोपाधिक धन खोय ॥ऋषभ०॥२॥

शब्दार्थ : प्रीत सगाई-प्रेम संबंध, सहु-सब जने, समस्त, न कोय-कोइ नहीं, निरुपाधिक-उपाधि रहित, निःस्वार्थ, सोपाधिक-उपाधिसहित, अन्त में कष्ट देनेवाली, धन-आत्म धन, आत्मा के मूल गुण, खोय-खोना, नष्ट करना।

भावार्थ : प्रेम सम्बन्ध तो जगत् में सब करते हैं। माता-पिता संतान के बीच, पति-पत्नि के बीच, भाई-बहिन के बीच, मित्र-मित्र के बीच आदि। किन्तु इनमें से एक की भी प्रीत सार्थक नहीं है। सार्थक प्रीति वही है, जो कि दुःख रहित और निःस्वार्थ है। जगत् के समस्त संबंध सांसारिक कामनाओं से युक्त होने के कारण से आत्मगुणों की हानि करनेवाले हैं। अतः लोकोत्तर प्रभु-प्रेम ही दुःख रहित

सच्चा प्रेम संबंध है।

मूल : कोई कन्त-कारण काष्ठ-भक्षण करे रे, मिलशुं कन्त ने धाय।
ए मेलो नवि कइये संभवे रे,
मेलो ठाम न ठाय ॥ऋषभ०॥३॥

शब्दार्थ : कन्त-कारण-पति के लिए, काष्ठ-भक्षण करे-चिता में जलकर मरना, जीवन का त्याग करने की हद तक तत्पर होना, धाय-दौड़कर, कइये-कभी भी, संभवे-संभव होना, मेलो-मिलाप, मिलन, ठाम न ठाय-ठाम ठिकाना नहीं होना।

भावार्थ : जगत् की प्रीति में भी निःस्वार्थ व त्याग भावना की प्रबलता को बताते हुए कवीश्वर कहते हैं कि कोई अपने प्रियतम के लिए, प्रियतम की खुशी के लिए, उसके धन, जीवन, मान-सम्मान की रक्षा के लिए जीवन तक का बलिदान करने को तत्पर हो जाता है फिर भी यह सांसारिक प्रेम सार्थक नहीं है। क्योंकि यह प्रेम इसी जगत् तक, इसी भव तक सीमित है। आगामी भवों में इसी भव के प्रेम संबंध की प्राप्ति अपवाद स्वरूप ही है। सामान्यतया इस भव के सांसारिक संबंध इसी भव के साथ समाप्त हो जाते हैं जबकि आत्म गुणों के सागर प्रभु के साथ का सच्चा प्रेम संबंध अनन्त समय तक (मुक्ति की प्राप्ति तक के समस्त भवों तक भी) बना रहता है।

मूल : कोई पति-रंजन अति-घणो तप करे रे, पति-रंजन तन-ताप।
ए पति-रंजन में नवि चित्त धर्युं रे,
रंजन धातु-मिलाप ॥ऋषभ०॥४॥

शब्दार्थ : पति रंजन-पति को खुश करने के लिए, पति को मोहने या रिझाने के लिए, अति-घणो-बहुत ज्यादा, तन-ताप-तन को तपाना, शरीर को कष्ट देना, चित्त धर्युं-चित में धारण करना, धातु मिलाप-शारीरिक धातुओं के मिश्रण तक ही, सांसारिक सुखों के हेतु ही।

भावार्थ : कोई नारी प्रियतम को रिझाने के लिए अत्यधिक तप करती है या प्रियतम के लिए अनेक प्रकार के कष्ट उठाती है। किन्तु यह प्रीति भी सार्थक नहीं है। क्योंकि इसमें भी लक्ष्य प्रियतम से मिलन तक के सांसारिक सुखों का ही है। चित्त की भावना व कामना स्वार्थ रहित नहीं होती है।

मूल : कोई कहे 'लीला रे अलख-अलखतणी रे, लख पूरे मन-आश'।
दोष-रहित ने लीला नवि घटे रे, लीला दोष-विलास॥ऋ०॥५॥

शब्दार्थ : लीला-माया, खेल, अलख-अलक्ष्य, समझी न जा सके ऐसी,

अलखतणी-अलक्ष्य-ब्रह्मा, अदृश्य देवता की, लख-लाखों, पूरे-पूरी करता है, मन आश-मन की आशाओं, इच्छाओं, घटे-घटित होना, संभव होना, दोष-विलास-दोष-पूर्ण, दोष का प्रभाव।

भावार्थ : कोई जगत्कर्त्ता ईश्वर वादी कहता है कि अज्ञात ईश्वर (ब्रह्मा) की माया रहस्यमय है तथा वह मन की लाखों आशाओं की पूर्ति करता है। अतः उसके प्रति प्रेम ही श्रेष्ठतम प्रेम है।

इसके विपरीत स्तवनकार कहते हैं कि निर्दोष को लीला-माया घटित नहीं होती है। लीला माया तो राग-द्वेष सहित होने से दोषों से परिपूर्ण है, तथा ऐसे दोष पूर्ण अज्ञात के प्रति प्रेम उत्तम कोटि का नहीं है।

जैन दर्शन के अनुसार चरमावर्ती शुक्ल पाक्षिक जीव किसी भी प्रकार से, किसी भी रूप को (किसी भी नामवाले परमात्मा को) परमात्मा मानकर उसके साथ प्रीति करता है, तो वह भी प्रीति अनुष्ठान योग गिना जाता है। किन्तु वह केवल असद्ग्रह युक्त प्रीति योग होता है। इन सबसे ऊपर उठकर आत्मा जब दोष रहित सर्वज्ञ प्रभु के प्रति प्रीति करने लगता है, तब उसे सच्चा सद्ग्रह युक्त प्रीति योग प्राप्त होता है।

मूल : चित्त प्रसन्ने रे पूजन फल कह्यूं रे, पूजा अखण्डित एह।
कपट रहित थई आतम अरपणा रे,
आनन्द घन पद रेह ॥ऋषभ०॥६॥

शब्दार्थ : चित्त प्रसन्ने-चित्त की प्रसन्नता, आत्मिक संतुष्टि, कपट रहित-निर्दोष रूप में, त्रण शल्य बिना, आतम-अरपणा-आत्म समर्पण, आनन्द-परम सुख, घन-समूह, पद-स्थान, रेह-रेखा, निशानी, प्राथमिक कारण।

भावार्थ : स्तवन की अन्तिम गाथा में श्री आनन्दघनजी महाराज कहते हैं कि चित्त का आनन्द (आत्मिक संतुष्टि) ही पूजा का फल है, तथा प्रसन्न चित्त से की गई पूजा-भक्ति ही अखण्ड पूजा है। चंदन, धूप, दीप, पुष्प आदि सामग्री सम्पूर्ण होने के बावजूद भी शुभभाव का अभाव हो तो वह अखण्ड पूजा नहीं है। कपट रहित अर्थात् माया-मिथ्यात्व व निदान तीन शल्य रहित होकर आत्म समर्पण करना ही परम सुख समूह पद (मुक्ति) पाने की प्राथमिक भूमिका है। जिस प्रकार भवन निर्माण से पूर्व कागज पर मानचित्र हेतु रेखाएँ खींची जाती हैं या नीवें खोदने से पहले भूमि पर नाप की रेखाएँ बनाई जाती हैं उसी प्रकार आत्मा का निर्दोष आत्म समर्पण ही मुक्ति पद की प्रथम रेखा है।

मानव मात्र के स्वभाव, आदत, संस्कार आदि गुण दोषों के अनुसार ही उसका मित्र मंडल बनता है। यद्यपि सांसारिक रिश्ते इसके विरुद्ध हो सकते हैं।

इसी कारण से कई बार प्रेम-मित्रता के संबंध उसके व्यक्तिगत रिश्तों से भी ज्यादा प्रभावी होते हैं। उसी प्रकार तथा भव्यता के योग से शुक्ल पाक्षिक जीव को सहजभाव से प्रभु की तरफ प्रीति व भक्ति उत्पन्न होती है। इस प्रीति व भक्ति का मूल कारण स्वयं की आत्मा के ऊपर की प्रीति व भक्ति ही होता है। अर्थात् स्वयं की आत्मा को ही (स्वयं के परमात्म भाव को ही) समर्पित होना होता है। देवत्व, गुरुत्व व धर्म आत्मा के प्रकाश हैं अतः मुक्ति की चाहना वाले जीव को प्रिय लगते हैं।

- सुदेव सुगुरु को वन्दन करनेवाला आत्मा निच गौत्र कर्म जो पूर्व में बाँधा हुआ है उसे खपाता है, नष्ट करता है। ऊँच गौत्र कर्म का बन्ध करता है। किसी भी प्रकार से नष्ट न हो ऐसा निकाचित सौभाग्य को पाकर सर्वजन प्रियता के साथ सभी स्थानों पर उसकी आज्ञा की परिपालना होती है। अखंड शासक बनता है। दाक्षिण्य गुण की प्राप्ति विशेष रूप से होती है।

  इस सूत्र से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वन्दन योग्य वन्दनीय आत्माओं को वन्दन करनेवाला उत्तरोत्तर विशुद्धता को प्राप्त करता हुआ वीतराग पद को, तीर्थंकर पद को प्राप्त कर सकता है।

  कृष्ण महाराजा ने विशुद्ध भाव से वन्दन द्वारा चार नरक के बन्धनों को तोड़ दिया। नीच गौत्र कर्म वहाँ तक नष्ट कर दिया। कृष्ण महाराज की आज जो जनप्रियता है वह भी वन्दना का किंचित फल है उत्कृष्ट फल तो तीर्थंकर नाम कर्म के उदय के समय प्राप्त होगा। वंदना का महत्त्व दर्शाते हुए महामंत्र में नमो शब्द प्रथम स्थान पर रक्खा है।

❋

- समुद्र में एक छोटा सा कंकर फेंकने पर पानी/जल में जो प्रक्रिया होती है। उससे भी कई गुनी प्रक्रिया एक सामान्य दिखनेवाले शुभाशुभ विचार के द्वारा आत्म प्रदेशों में होती है। एक शुभ विचार अनेकानेक बार दोहराने से आत्मबल में वृद्धि होकर उस बल से कर्मशत्रु के सर्वनाश की प्रक्रिया हो जाती है। आत्मा मुक्ति नगर में पहुँच जाती है। वैसे ही एक अशुभ विचार से आत्मा दुर्गति में भटक जाती है। अतः विचारों पर पूर्ण रूप से हमें ध्यान देना है। कहीं हमारे विचारों में अशुद्धि प्रवेश न कर जाय।

"समाधान की ज्योत"

२ श्री अजितनाथ जिन स्तवन

श्री वीतराग परमात्मा के साथ प्रीति करने के पश्चात् मार्ग की खोज में मोक्षाशयी जीव प्रयास रत रहता है। यह वर्णन इस स्तवन में है।

मूल : पंथडो निहालु रे बीजा जिन तणो रे,
'अजित' अजित गुण धाम।
जे ते जित्या रे, तेणे हुं जितियो रे,
पुरुष किश्युं मुज नाम? ॥पंथडो०॥१॥

शब्दार्थ : पंथडो-पंथ, रास्ता, मार्ग, निहालुं-निहारना, देखना, खोजना, अजित-अजितनाथ नामक दूसरे तीर्थंकर भगवान, अजित गुण धाम-अजेय गुणों के भण्डार, किश्युं-किस प्रकार।

भावार्थ : जिस मार्ग पर चलते हुए अजेय गुणों के भण्डार श्री अजितनाथ नामक दूसरे तीर्थंकर प्रभु ने मुक्ति पद प्राप्त किया, मैं उस मार्ग को खोज रहा हूँ। हे प्रभो, जिन दोष रूपी आत्म शत्रुओं को आपने जीत लिया है, उन दोषों से मैं पराजित हुआ हूँ। अतः मैं हारा हुआ, पुरुषार्थ रहित, पुरुष कैसे कहा जा सकता हूँ?

मूल : चर्म नयन करी मार्ग जोवतां रे, भूल्यो सयल संसार।
जेणे नयणे करी मार्ग जोइये रे,
नयन ते दिव्य विचार ॥पंथडो०॥२॥

शब्दार्थ : चर्म नयन करी-चमड़े की आंखों से, जोवतां-देखते हुए, भूल्यो-भूला-भटका, सयल संसार-सम्पूर्ण जगत्, जेणे नयणे करी-जिन आँखों से जोइये रे-देखा जा सकता है, दिव्य-विचार-दिव्य परमार्थिक विचारणा, परम ज्ञान-चक्षु।

भावार्थ : कवीश्वर इस गाथा से मुक्ति मार्ग की खोज में आने वाली बाधाओं का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इस शरीर की आँखों से मार्ग खोजते हुए तो मैं सम्पूर्ण संसार पथ में भूल कर रहा हूँ। क्योंकि यह मार्ग पहचाना जा सके इसके लिए परम समकित ज्ञान रूपी नयन आवश्यक हैं।

मूल : पुरुष परम्पर अनुभव जोवतां रे, अन्धो अन्ध पलाय।
वस्तु विचारे रे जो आगमें करी रे,
चरण-धरण नहीं ठाय ॥पंथडो०॥३॥

शब्दार्थ : परम्परा-एक के बाद एक, क्रमानुसार, अन्धो-अन्ध पलाय-अन्धे के पीछे अन्धा चलता है, वस्तु-वस्तु स्थिति, तत्त्व, आगम-शास्त्र, चरण-कदम,

धरण-धरना, ठाय-ठिकाना।

भावार्थ : किसी पुरुष के परम्परागत अनुभव को देखते हुए चलें तो यह तो अन्धे के पीछे अन्धे के चलने जैसा है। क्योंकि सत् ज्ञानरूपी दृष्टि से रहित अंधा किसी को मार्ग कैसे बता सकता है? शास्त्रों की सहायता से जो वस्तु स्थिति का विचार करने लगे तो भी अनेकानेक शास्त्रों की उपलब्धता, कई शास्त्रों में हुआ खोटा-खरा मिश्रण व जीव की अल्पज्ञता के कारण से पैर रखना भी मुश्किल है।

मूल : तर्क-विचारे रे वाद-परम्परा रे, पार न पहोंचे कोय।
अभिमत-वस्तु वस्तु गतें कहे रे,
ते विरला जग जोय ॥पंथडो०॥४॥

शब्दार्थ : *तर्क विचारे-तर्क की सहायता से, तर्क पूर्ण विचारणा से, वाद-परम्परा-तर्क से तर्क करते ही जावे, वाद-विवाद का लम्बा तार, पार-दूसरा किनारा, अभिमत वस्तु-मन चाही वस्तु, सत्य तत्त्व, वस्तु-गते-सत्य तरीके से, जोय-जोहना, दिखाई देना।*

भावार्थ : तर्क से विचार करे तो वाद-विवाद का कोई अन्त नहीं है। सही तरीके से सत्य तत्त्व को समझाने-योग्य शुद्ध उपदेशक इस जगत् में दुर्लभ है।

मूल : वस्तु विचारे रे, दिव्य-नयन तणो रे, विरह पड्यो निरधार।
तर-तम जोगे रे, तर-तम वासना रे,
वासित बोध आधार ॥पंथडो०॥५॥

शब्दार्थ : *वस्तु विचारे-वस्तु का विचार करने पर, दिव्य नयन तणो-दिव्य नयन वाला, केवल ज्ञानी भगवन्, विरह-वियोग, पड्यो-हुआ, तर-तम-जोगे-अल्पता व अधिकता के क्रमिक स्तरों के होने से, तर-तम-कम-ज्यादा, वासना-ज्ञान का क्षयोपशम, वासित-सुवासित, संस्कारित, भोगे हुए से उत्पन्न अनुभव, बोध-सत्य ज्ञान, समझ, आधार-सहारा, आश्रय।*

भावार्थ : वस्तु का विचार करने में समर्थ ज्ञानी भगवंतों का वियोग हुआ है।

उपर्युक्त बाधाओं के वर्णन के बाद भी मोक्षाशयी जीव के लिए (प्रथम मुख्य आधार) जगत् में जिस समय में तुलनात्मक रूप से जो ज्यादा बुद्धिशाली, विवेकशाली, अनुभवी व समकित चरित्रवान् पुरुष है उनका ज्ञान, उनका गीतार्थपना ही आधार रूप होता है।

मति ज्ञान के धारणा नामक भेद के अविच्युति, वासना व स्मृति ये तीन भेद कहे गये हैं। इसमें वासना शब्द का अर्थ मतिज्ञानावरणीय कर्म के तथाप्रकार के क्षयोपशम से उत्पन्न संस्कार किया गया है तथा यह वासना तर-तमता अनुसार ऊँचे प्रकार का बोध, अर्थात् मोक्षाशयी जीव के प्राथमिक स्तर का

निर्मल बोध भी माना गया है।

मूल : काल-लब्धि लही पंथ निहालशुं रे, ए आशा अवलम्बो
ए जन जीवे रे जिनजी जाणजो रे,
आनन्द-घन मत अम्ब ॥पंथडो०॥६॥

शब्दार्थ : काल लब्धि-समय की परिपूर्णता रूपी आत्मा की शक्ति, लही-प्राप्त करके, पंथ-मार्ग, निहालशुं-निहारूँगा, देख सकूंगा, अवलम्ब-आधार, आनन्द घन-आत्मा, मत-विचार, अम्ब-सहारा, आसरा, आनन्द घन मत अम्ब-मोक्षाशय का, आत्म विकास की भावना का जिसको सहारा है।

भावार्थ : समय की परिपूर्णता रूपी लब्धि (सामर्थ्य) प्राप्त होने पर आपका मुक्ति मार्ग देख सकूंगा, जान सकूंगा। यह आशा भी बड़ा सहारा है। स्तवन के अन्त में श्री लाभानन्दजी महाराज अपने 'आनन्द घन' उपनाम का उपयोग करते हुए कहते हैं कि हे जिनेश्वर प्रभु यह जीव मोक्षाशय प्रवृत्ति के सहारे आत्म विकास लक्ष्य में स्थिर रहते हुए मार्ग प्राप्त कर सकेगा।

समकित पाने से पहले मिथ्यात्व भाव मंद होने से, लघुकर्मी तथा अल्पसंसारी होने से उच्च भावना के योग से जीव जीवन के कर्त्तव्यों को देव गुरु धर्म संबंधी उत्तम कार्यों को श्रद्धापूर्वक, उल्लासपूर्वक उत्साहित चित्त से करता है। तथा आगे से आगे प्रगति करने की भावना रखता है।

- धर्माचरण करनेवाले आत्मा को चाहिए कि वह स्वयं का निष्पक्षपात पूर्वक निरीक्षण करके देखे कि दिन-दिन मेरी राग-द्वेष की परिणति मंद हो रही है या नहीं। राग-द्वेष की परिणति मंद हो रही है तो मैंने जिनाज्ञा का पालन किया ऐसा कहा जा सकता है। अगर धर्माचरण वर्षों से करते हुए भी कषायों की प्रवृत्ति में कोइ अंतर नहीं आया तो जिनाज्ञा का पालन नहीं हुआ। अतः प्रत्येक आत्मा को चाहिए कि वह आत्म निरीक्षण करता रहे एवं राग-द्वेष की परिणति को मंद करने हेतु प्रयत्नशील बनें।

''समाधान की ज्योत''

३ श्री संभवनाथ जिन स्तवन

मार्गाभिमुखी जीव स्वयं का आत्म विकास तथाभव्यता के योगानुसार क्रमशः कर सकता है। सामान्यता से कोई भी भव्य आत्मा स्वयं का विकास क्रमशः ही कर सकता है। उसका वर्णन इस स्तवन में दर्शाया है।

मूल : संभव-देवः ते धुर सेवो सवे रे, लही प्रभु सेवन भेद।
सेवन-कारण पहेली भूमिका रे,
अ-भय अ-द्वेष अ-खेद ॥संभव०॥१॥

शब्दार्थ : संभव देव-संभवनाथ नामक तीसरे तीर्थंकर प्रभु, धुर-पहले, प्रारम्भ में, सेवो-पूजन करो, सवे-सब जने, लही-ग्रहण करके, जानकर के, प्रभु सेवन भेद-प्रभु की सेवा करने की विधि, प्रभु के आलम्बन द्वारा आत्म विकास का मार्ग, सेवन कारण-सेवा में सहायक, पहेली-प्रथम, भूमिका-पाया, सीढ़ी।

भावार्थ : हे भव्यजनों! प्रभु की सेवा करने की विधि को जानकर, प्रभु के आलंबन द्वारा आत्म विकास का मार्ग समझकर सबसे पहले संभव देव जिन की पूजा करो।

इस स्तवन में तत्त्वज्ञानी कवि ने आत्म विकास की क्रमिक सीढ़ियों का वर्णन करते हुए कहा है कि भय, द्वेष व खेद रहित प्रभु सेवा ही आत्म विकास की प्रथम सीढ़ी है।

मूल : भय चंचलता हो जे परिणामनी रे, द्वेष अरोचक भाव।
खेद प्रवृत्ति करता थाकीए रे,
दोष अबोध लखाव ॥संभव०॥२॥

शब्दार्थ : भय-अधीरता, द्वेष-अप्रीति, मुक्ति, मुक्ति मार्ग व मुक्ति मार्ग के आराधकों के प्रति अप्रीति, अरुचि, खेद-व्याकुलता, उपेक्षा भाव, प्रवृत्ति-धार्मिक क्रिया, थाकीए-थकना, दोष-मिथ्यात्व, कर्मफल, अबोध-अज्ञान भाव, लखाव-लखना, समझना।

भावार्थ : भय अर्थात् परिणाम की चंचलता, द्वेष अर्थात् मुक्ति, मुक्ति पथ व उसके साधकों व साधनों की तरफ अरुचि का होना व खेद यानि देव, गुरु, धर्म की तरफ आत्म विकास की सहायक क्रिया में व्याकुलता का होना उससे थकान या ऊब महसूस करना, उससे दूर रहने की भावना होना। इन तीनों स्थितियों को जीव के साथ अनादिकाल से लगे कर्मरूपी मल व अज्ञान भाव जानना चाहिए।

जीव जब तक चरमावर्त (अन्तिम पुद्गल परावर्तन) में प्रवेश नहीं करता है, तब तक भवाभिनंदी होने से उसमें आत्म विकास के तत्त्वों की ओर भय, द्वेष

व खेद आदि दोष होते हैं। चरमावर्त्त में प्रवेश करने पर अभय, अद्वेष व अखेद आदि सद्‌गुणों की प्राप्ति होती है। तथा मोक्षाशय (मुक्ति की चाहना) उत्पन्न होता है। यह आत्मविकास की प्रथम सीढ़ी है।

मूल : चरमावर्ते हो चरम करणे तथा रे, भव-परिणति-परिपाक।
दोष टले वली, दृष्टि खुले भली रे,
प्राप्ति प्रवचन वाक् ।।संभव०।।३।।

शब्दार्थ : चरमावर्ते-अन्तिम पुद्‌गल परावर्तन में, चरम करणे-अन्तिम यथा प्रवृत्ति करण में, भव परिणिति-तथा भव्यता, परिपाक-पकना, पूर्णता को प्राप्त करना, दोष-अनादि कर्म फल, टले-टलना, नष्ट होना, वली-और, दृष्टि-ज्ञान चक्षु, समझ, विवेक, खुले-खुलना, प्राप्त होना, भली-उत्तम, अच्छी, प्राप्ति-पाना, प्रवचन-वाक्-उत्तम वचन-वाणी।

भावार्थ : चरमावर्त्त में जीव प्रवेश करने के पश्चात् कभी भी कर्म की उत्कृष्ट स्थिति नहीं बांधता है अर्थात् अपुर्नबन्धक आदि धार्मिक भाव प्राप्त करता है।

इस प्रकार आगे विकास करता हुआ आत्मा अन्तिम यथा प्रवृत्ति करण को प्राप्त करता है। तत्पश्चात् तथाभव्यता की परिपूर्णता होती है जिससे कर्मफल रूपी तीव्र मिथ्यात्व दोष नष्ट होता है। तब मित्रा नामक प्रथम ज्ञान दृष्टि प्राप्त होती है और तब आत्म विकास में सहायक ज्ञान वचनों की प्राप्ति होती है। जैनदर्शन या अन्य किसी भी दर्शन के माध्यम से उत्तम धर्म वचनों के प्रति समझ व श्रद्धा बनती है।

मूल : परिचय पातक घातक साधु शुं रे, अकुशल अपचय चेत।
ग्रन्थ अध्यात्म श्रवण मनन करी रे,
परिशीलन नय हेत ।।संभव०।।४।।

शब्दार्थ : पातक-पापकर्म, घातक-नाश करनेवाला, अपचय-अपच, पापकर्म, चेत-चेतनता, ग्रन्थ-पुस्तकें, अध्यात्म-धार्मिक, आत्मविकास में सहायक, बोध व तत्त्व ज्ञान से सम्बन्धित, श्रवण-सुनना, परिशीलन-गहन चिन्तन, मनन, सतत शुभ चिन्तन, नय हेत-नय व हेतु वाद का विचार सहित।

भावार्थ : पाप कर्मों का नाश करनेवाले श्रेष्ठ साधु महात्माओं के साथ परिचय होता है आत्मा (चेतना) की अपचन अर्थात् पापकर्मों की अकुशलता रहती है, पापकर्मों का नाश होता है। धार्मिक-आत्म विकास में सहायक बोधपूर्ण, तत्त्वज्ञान संबंधित पुस्तकों का ज्ञान सुनने पढ़ने के अवसर प्राप्त होते हैं। उनका चिन्तन मनन करने का मन होता है। और नयवाद तथा हेतुवाद पूर्वक उनका गहन सतत मनन होता है। उस पर अमल करने के निश्चित उपाय सूझते हैं।

मूल : कारण जोगे हो कारज निपजे रे, एहमा कोई न वाद।
पण कारण विण कारज साधिए रे,
ए निज मत उन्माद ।।संभव०।।५।।

शब्दार्थ : कारणजोगे-कारण सामग्री का योग हो, कारज-कार्य, निपजे-उत्पन्न हो, वाद-वाद विचार, प्रश्न, शंका, कारण विण-बिना कारण, साधिए-सिद्ध करने का प्रयास, निज मत उन्माद-स्वयं के विचारों का उन्माद या स्वच्छन्दता।

भावार्थ : कोई भी कार्य उसके अनुकूल कारण सामग्री (साधन-सामग्री) से ही सम्पन्न होता है। इसमें कोई विवाद नहीं है। इसी प्रकार आत्म विकास के उपर्युक्त कार्य भी उचित साधनों के योग से ही पूर्ण होते हैं। परन्तु जो कारण सामग्री बिना कार्य सिद्ध करने का प्रयास करता है यह तो धर्मान्धता या स्वच्छंदता ही मानी जायेगी। जिसके पास कार्य कारण की तात्त्विक सुव्यवस्था हो वही सही धर्म मानना चाहिए।

मूल : मुग्ध सुगम करी सेवन आदरे रे, सेवन अगम अनूप।
देजो कदाचित् सेवक याचना रे,
आनन्द-घन-रस रूप ।।संभव०।।६।।

शब्दार्थ : मुग्ध-मोहित, भोला, सुगम-सरल, आदरे-शुरु करे, अगम-अगम्य, कठिन, अनूप-अनुपम, सुन्दर, देजो-देना, कदाचित-कभी, सेवक याचना-भक्त की प्रार्थना, आनन्द-घन-रस रूप-आनन्द स्वरूप सर्वज्ञ प्रभु।

भावार्थ : भोले, अज्ञानी या मोहित लोग प्रभु की सेवा को अति सरल मानकर करते हैं। पर प्रभु की अनुपम सेवा तो अति गूढ़, रहस्यपूर्ण व कठिन है।

हे आनन्द घन के रस रूप प्रभो! आपकी अनुपम अगम्य सेवा करने का अवसर प्रदान करने की भक्त की प्रार्थना कभी तो स्वीकार करना। या देव गुरु व धर्म के प्रति मोहित आत्मा (मोक्षाशयी जीव) प्रभु की अगम्य व अनुपम भक्ति को भी सरलता से पा लेता है। हे प्रभो! इस आत्मा में भी आपके समान आनन्द घन रस रूपपना प्राप्त हो सके इस प्रार्थना को स्वीकार करना।

- जो आत्मा विनय से रहित अर्थात् अविनयी होता है या अविनयी बन जाता है। उस व्यक्ति में कौनसा धर्म? एवं कौनसा तप? अर्थात् विनय विहीन आत्मा कितनी ही धर्म क्रिया कर ले, चाहे जितनी तपश्चर्या कर ले, वह क्रिया एवं वह तप धर्म की श्रेणी में गीनती में आनेवाला नहीं।

''समाधान की ज्योत''

४ श्री अभिनन्दन जिन स्तवन

सीढ़ी दर सीढ़ी मार्गाभिमुखी मोक्षाशयी जीव प्रीति योग में प्रवेश करके परमात्मा के दर्शन का प्यासा है तथा दर्शन के मार्ग में अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी हार्दिक प्रयत्न करता रहता है। ऐसा इस स्तवन के माध्यम से समझाया है।

मूल : अभिनन्दन जिन दरिसण तरसिये, दरिसण दुर्लभ देव।
मत मत भेदे रे जो जई पूछिये,
सहु थापे अहमेव ॥अभि०॥१॥

शब्दार्थ : दरिसण-दर्शन, तरसिये-तरसना, मत-मत भेदे-अलग-अलग पंथ, मत-मतांतर, सम्प्रदाय या धार्मिक संस्थाएँ, जई-जाकर, पूछिए-पूछना, सहु-सब, थापे-स्थापित करे, अहमेव-स्वयं को।

भावार्थ : दर्शन शब्द का इस स्तवन में कई जगह उपयोग हुआ है। तथा इसके कई अर्थ हैं। (१) आँखों से देखना (२) पाँच इन्द्रियों व मन की सहायता से तत्त्व का ज्ञान करने के लिए आत्मा का दर्शन गुण (३) दर्शन मोहनीय कर्मों के क्षयोपशम से उत्पन्न दर्शनलब्धि (४) उसकी सहायता से सामान्य जानने योग्य निराकार उपयोग (५) मत, पंथ, धर्म, संस्था जैसे जैनदर्शन, बौद्धदर्शन, वैदिकंदर्शन (६) जगत को देखने समझने की अलग अलग दृष्टि (७) देव, गुरु, मान्य या पूज्य महापुरुष का या उनकी प्रतिमा, फोटो आदि को भक्ति से देखना या मन में स्मरण करना (८) सर्वज्ञ वीतराग प्रभु को सही रूप से जानना (९) सुदेव, सुगुरु, सुधर्म उपर शुद्ध श्रद्धा सम्यग्दर्शन, तत्त्वदर्शन आदि (१०) स्वात्मभाव स्वयं की आत्मा को पहचानना।

हे अभिनन्दन जिन! मुझे आपके दर्शनों की प्यास लगी है। आपको, आपके द्वारा प्ररूपित दर्शन को (स्वयं की आत्मा के परमात्मभाव को) जानने की इच्छा जगी है। दर्शन मोहनीय कर्मों के क्षयोपशम के बिना, शुद्ध सम्यग् ज्ञान के बिना यह दर्शन सम्भव नहीं है अतः परमात्म स्वरूप के वास्तविक दर्शन दुर्लभ हैं।

अलग अलग मत मतान्तरों में जिससे भी पूछें वे सब स्वयं को ही भगवान व स्वयं के सिद्धान्त को ही एकमात्र सत्य बताते हैं।

मूल : सामान्ये करी दरिसण दोहिलुं, निर्णय सकल विशेष।
मदमें घेर्यो रे अंधो किम करे,
रवि शशि रूप विलेख ॥अभि०॥२॥

शब्दार्थ : सामान्ये करी-सामान्य रीति से, दोहिलुं-कठिन, निर्णय सकल विशेष-विशेष रूप से सटीक निर्णय, मदमें-नशे में, घेर्यो-घिरा हुआ, किम करे-कैसे

करे, रवि-सूर्य, शशि-चन्द्रमा, रूप-स्वरूप, विलेख-वर्णन, पृथकता का ज्ञान।

भावार्थ : सामान्य रीति से भी जिनदर्शन की, सम्यग् ज्ञान की प्राप्ति कठिन है फिर विशेष रूप से सटीक निर्णय करने में समर्थ दर्शन ज्ञान की प्राप्ति तो अति कठिन होगी ही। जैसे नशे में धुत व अंधा व्यक्ति सूर्य व चन्द्र का वर्णन उनके स्वरूप व भेद का वर्णन नहीं कर सकता, उसी प्रकार मोह से मोहित व मिथ्यात्व से अंध आत्मा सत्य दर्शन को कैसे समझ सकता है? कैसे बता सकेगा?

मूल : हेतु-विवादे हो चित्त धरी जोइये, अति दुर्गम नयवाद।
आगम-वादे हो गुरु गम को नहीं,
ए सबलो विषवाद ॥अभि०॥३॥

शब्दार्थ : हेतु विवादे-हेतुवाद, तर्कपूर्ण बात, चित्त धरी जोइये-मन लगाकर प्रभु दर्शन करना चाहे, नयवाद-अलग-अलग मंतव्यों से प्रकट होना नयवाद, आगम वादे-शास्त्रों की सहायता से, गुरु गम-गुरु का योग, को-किसी भी प्रकार का, सबलो-सबल, विषवाद-विखवाद-उद्वेग।

भावार्थ : हे अभिनन्दन जिन! आपके सिद्धान्त को समझने के लिए तर्क पूर्ण विचार करना आवश्यक है परन्तु नयवाद अत्यन्त दुर्गम है। एक नय से एक बात सिद्ध होती है। तो दूसरा नय उसका निषेध कर देता है। ऐसे दुर्गम नयवाद को समझने हेतु आगम के ज्ञाता गुरुदेव का योग भी मुश्किल है। यही मेरे मन में अत्यन्त सबल उद्वेग है।

मूल : घाति डूंगर आडा अति घणा, तुज दरिसण जगनाथ।
धिट्ठाई करी मारग संचरू,
सेंगु कोई न साथ ॥अभि०॥४॥

शब्दार्थ : घाति डूंगर-घाटी पर्वत, घाती कर्मरूपी बाधाएं, धिट्ठाई करी-धृष्टतापूर्वक दुस्साहस से, संचरू-चलता हूँ, सेंगू-साथ चलनेवाला सगा, साथी।

भावार्थ : हे जगत्नाथ! आपके दर्शन करने में मोहनीय वगेरे घाती कर्मों रूपी अनेक विघ्नमय पर्वत स्थित हैं। फिर भी दुस्साहस पूर्वक आपके मार्ग पर प्रवृत्त होता हूँ। पर इस मार्ग पर कोई मार्गदर्शक-साथी भी नहीं है।

मूल : दरिसण दरिसण रटतो जो फिरूँ, तो रण रोझ समान।
जेहने पिपासा हो अमृत पाननी,
किम भांजे विषपान ॥अभि०॥५॥

शब्दार्थ : रण-वन, रोझ-रोझ नामक जंगली पशु, नील गाय, पिपासा-प्यास, किम-कैसे, भांजे-पूरी हो।

भावार्थ : यह दर्शन (धर्म) अच्छा या यह दर्शन (धर्म) अच्छा इस प्रकार रटन

करते-करते घूमता हूँ तो ज्ञानियों की नजर में मैं जंगली पशु रोझ के समान दिखायी देता हूँ।

जिसको सत्यधर्म रूप दर्शन (अमृत) की प्यास लगी है उसकी प्यास विष रूप असत्य धर्म रूप दर्शन से किस प्रकार पूर्ण होगी?

मूल : तरस न आवे हो, मरण जीवन तणो, सीझे जो दरिसण काज।
दरिसण दुर्लभ, सुलभ कृपा थकी,
आनन्द-घन महाराज ॥अभि०॥६॥

शब्दार्थ : तरस-त्रास, दुख, सीझे-सिद्ध हो, काज-कार्य, आनन्द घन महाराज-आनन्द के समूह रूप आप श्री भगवान।

भावार्थ : हे प्रभु! जो आपके दर्शन रूपी कार्य सिद्ध हो जाय तो जन्म मरण का दुःख न रहे। (उपर्युक्त कारणों से) अति दुर्लभ आपका दर्शन भी आनन्द के समूह स्वरूप आपकी कृपा से सुलभ हो जाता है।

- आत्मा दर्शन मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से युक्त बनकर ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम करता है तब वह ज्ञान उस आत्मा का एवं अन्य आत्माओं का हित कर सकता है। दर्शन मोहनीय कर्म के क्षयोपशम के बिना ज्ञानार्जन आत्मा के लिए, कभी-कभी अहितकर्ता हो जाता है।

  जिनेश्वर भगवंतों ने कहा है कि ज्ञानार्जन के द्वारा दर्शन मोहनीय एवं चारित्र मोहनीय कर्म का क्षयोपशम करना चाहिए। इसी हेतु प्रयत्नशील रहना चाहिए। यही पुरुषार्थ सर्वश्रेष्ठ है।

- विनय योग्य आत्माओं का विनय करना ही वास्तविक विनय है। तिरस्कार किसी भी प्राणी का नहीं करना है। वैसे विनय सभी का करना ही है ऐसा नहीं है। इसीलिए तो बत्तीस प्रकार के विनय वादियों को धर्म से विमुख कहे हैं। अतः यह सुनिश्चित रूप से सिद्ध है कि विनय योग्य आत्माओं का विनय करना वही वास्तविक विनय है और वही विनय कर्मक्षय करवाता है।

"समाधान की ज्योत"

५ श्री सुमतिनाथ जिन स्तवन

सम्यग्दर्शन की इच्छावाला व्यक्ति आत्मोन्नति में आवश्यक अध्यात्मिक तत्त्वों का अधिगम प्राप्त करने का प्रयत्न करता है वह वर्णन सातवें स्तवन तक है। प्रथम में 'कपट रहित थइ आतम अरपणा' कहा, इस स्तवन में आत्म अर्पणा का मार्ग बताया गया है।

मूल : सुमति चरण कज आतम अरपणा,
दरपण जिम अविकार सुज्ञानि।
मति तरपण बहु सम्मत जाणिये,
परिसरपण सुविचार सुज्ञानि ॥सु०॥१॥

शब्दार्थ : सुमति-श्री सुमतिनाथ भगवान, सद्बुद्धि, चरण-पैर, क-पानी, ज-उत्पन्न होना, कज-कमल, दरपण-दर्पण, अविकार-विकार रहित, मति-तरपण-बुद्धि को संतोष देनेवाली, बहु-सम्मत-बहुत लोगों की सम्मतियुक्त, परिसरपण-जाना, चलना।

भावार्थ : दर्पण के समान विकार रहित (स्वयं के आग्रह रहित) सुमतिवाले श्री सुमतिनाथ भगवान के चरण कमलों में आत्मा का समर्पण करना, यह बुद्धि को संतोष देनेवाला, बहुत जनों की सम्मति युक्त, सद्विचार में प्रवेश करने के समान है। अतः हे सुज्ञानी भव्य लोगों! ऐसा आत्म समर्पण करें।

मूल : त्रिविध सकल तनुधर गत आतमा,
बहिरातम धुरि भेद सुज्ञानि।
बीजो अंतर आतमा तीसरो,
परमातम अविच्छेद सुज्ञानि ॥सु०॥२॥

शब्दार्थ : त्रिविध-तीन प्रकार का, सकल-सब, तनुधर-तनधारी, शरीरधारी प्राणी, बहिरातमा-बाह्य आत्मा, बाह्य दृष्टि प्रधान जीवन जीनेवाला प्राणी, धूरि-पहला, भेद-प्रकार, अन्तरात्मा-आन्तरिक दृष्टि से जीवन जीनेवाला आत्मा, परमातम-विकसित, समस्त गुणों युक्त श्रेष्ठ आत्मा, अविच्छेद-अखंड, अविनाशी।

भावार्थ : समस्त जीव मात्र में आत्मा तीन अवस्था में होती है। प्रथम बहिरात्मा, दूसरी अन्तरात्मा व तीसरी शाश्वत अवस्था में स्थित परम आत्मा।

मूल : आतम-बुद्धे कायादिक ग्रह्यो, बहिरातम अघरूप सुज्ञानि।
कायादिक नो हो साखिधर रह्यो,
अन्तर आतम रूप सुज्ञानि ॥सु०॥३॥

शब्दार्थ : आतम बुद्धे-मैं, मेरा आदि, समझ से, कायादिक-शरीर, संपति, परिवार, सांसारिक संबंध, ग्रह्यो-ग्रहण किया, समझना, अघरूप-दोष रूप, साखिधर-साक्षी स्वरूप में।

भावार्थ : आत्म समर्पण हेतु तीन प्रकार के भेद समझना आवश्यक है। अतः विस्तृत विवेचन करते हुए कवीश्वर कहते हैं कि मैं व मेरा की ममता से जब तक आत्मा मोहित रहता है तब तक वह बहिरात्मा (दोषपूर्ण) होता है, किन्तु जब आत्मा जगत् के क्रिया-कलापों को स्व के अहं से रहित साक्षीभाव में जीता (करता) है तब शांत, संयमी, त्यागी आतमा अंतरात्मा कहलाता है।

मूल : ज्ञानानन्दे हो पूरण पावनो, वर्जित सकल उपाध सुज्ञानि।
अतीन्द्रिय गुण गण मणी आगरू,
एम परमात्म साध सुज्ञानि ॥सु०॥४॥

शब्दार्थ : ज्ञानानन्दे-ज्ञान के आनन्द से, पूरण-भरपूर, पावनो-पवित्र, वर्जित-रहित, सकल-सब, उपाध-कर्मादिक उपाधियों, अतीन्द्रिय-इन्द्रियों के ज्ञान से बाहर, गण-समूह, मणि-रत्न, आगरू-आगार, एम-ऐसे, साध-साधना करो।

भावार्थ : हे सुज्ञानी! "ज्ञान के आनन्द से परिपूर्ण, पवित्र, समस्त कर्मादिक उपाधियों से रहित, इन्द्रियों से अगम्य, गुणों के समूह रूप रत्नों का भण्डार" ऐसे परमात्म पद की साधना करो।

मूल : बहिरातम तजी अन्तर आतमरूप, थई थिर भाव सुज्ञानि।
परमातमनुं हो आतम भाववुं,
आतम अरपण दाव सुज्ञानि ॥सु०॥५॥

शब्दार्थ : तजी-त्यागकर, थिर भाव-स्थिर भावना से, एकाग्रता से, दाव-खेल, युक्ति, रीत।

भावार्थ : शरीरादि पर ममत्व भाव का त्यागकर, सुख-दुःख मान-अपमान आदि से उदासीनता धारणकर अर्थात् बाह्य सांसारिक प्रभावों का त्यागकर स्थिर भाव से अन्तरात्म स्वरूप में स्थित होकर परमात्म अवस्था की भावना रखनी, यही आत्म समर्पण की सच्ची रीत है।

जैनदर्शन के अनुसार स्वयं के आत्मा को परमात्म अवस्था में लाना यही परमात्मा को आत्म समर्पण है।

मूल : आतमअरपण वस्तु विचारतां, भरम टले मति दोष सुज्ञानि।
परम पदारथ संपत्ति संपजे,
आनन्द-घन-रस पोष सुज्ञानि ॥सु०॥६॥

शब्दार्थ : भरम-भ्रम, अज्ञान, टले-नष्ट होता है, मति-बुद्धि, ज्ञान, परम पदारथ

संपत्ति-मोक्ष, संपजे-सम्पन्न होता है, मिलता है, आनन्द घन रस पोष-आनन्द समूह से भरपूर-इसको पोषित करनेवाला।

भावार्थ : इस प्रकार आत्म समर्पण के रहस्यों पर विचार करते हुए, अज्ञान रूपी दोष नाश होता है (केवल ज्ञान की प्राप्ति होती है) तथा आनन्द के समूह से भरपूर रस का पोषण करने वाला परम पदार्थ संपत्ति अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है।

- योगाभ्यास मेरे पिताजी है, समता धावमाता है, निरागता रूपी बहन मुझे अतीव प्रिय है, मेरे अनुकूल वर्तन करनेवाला भाई विनय है, विवेक रूपी सुपुत्र है, प्राणों से भी अधिक प्रिय पत्नी है सुमति, मेरा प्रिय भोजन है ज्ञानामृत, मेरे पास अखंड निधि है समकित। इस प्रकार के मेरे अंतरंग कुटुंब पर मुझे अत्यंत अनुराग है।

  मैं तप रूपी अश्व पर आरूढ़ होकर, भावना रूपी कवच धारणकर, अभयदानादि महामंत्रियों को साथ लेकर, संतोष रूपी महासेनापति को अग्रपद देकर, संयमगुण रूपी सेना को सज्जकर, क्षपक श्रेणिरूपी हाथियों के समूह से युक्त गुरु आज्ञा रूपी मुकट को मस्तक पर धारण कर, धर्मध्यान, शुक्लध्यान रूपी तलवार द्वारा अत्यंत दुःख दायिनी मोह राय की सेना एवं मोह राजा के साथ युद्ध कर उसका हनन करूँगा।

- ऋषि महर्षियों ने दया/जयणा की महानता दर्शाते हुए स्पष्ट रूप से कह दिया कि आप चाहे चारित्र ग्रहण करते हो, दान देते हो, भिक्षा मांगकर लाते हो, कठिन से कठिन तप करते हो, ध्यान करते हो या मंत्र जाप करते हो। सभी प्रकार की धर्मक्रिया करते समय तुम्हारे पास जयणा/दया नहीं है। उन कार्यों के करते समय दया पालन, जीव रक्षा का खयाल ही नहीं है, ध्यान ही नहीं है, तो वह धर्म क्रिया, धर्म क्रिया के वास्तविक रूप में नहीं है। रण प्रदेश में कभी जल की भ्रांति होती है वैसे ऐसी धर्म क्रियाओं में धर्म की भ्रांति हो सकती है, वास्तव में दया पालन के बिना धर्म नहीं हो सकता।

- जलती हुई अग्नि में प्रवेश कर लेना अच्छा है किंतु चिर संचित व्रत का भंग करना ठीक नहीं। विशुद्ध कर्मशील रहकर मर जाना अच्छा है किन्तु शील से स्खलित होकर जीना ठीक नहीं।

''समाधान की ज्योत''

६ श्री पद्मप्रभु जिन स्तवन

इस स्तवन में बहिरात्मभावी स्वयं ही अन्तरात्मरूप होकर परमात्मा हो सकता है। अर्थात् एक ही आत्मा की तीन अवस्था किस प्रकार होती है उसका वर्णन दर्शाया गया है।

मूल : 'पद्म प्रभ जिन!' तुझ, मुझ आंतरू रे, किम भांजे भगवन्त?
कर्म विपाके कारण जोइने रे,
कोई कहे मति-मन्त ॥पद्म०॥१॥

शब्दार्थ : आंतरू-अन्तर, भांजे-भंग होना, कर्म-विपाके-कर्मों के फल अनुसार, मति मन्त-बुद्धिमान, ज्ञानी।

भावार्थ : हे पद्म प्रभु जिनेश्वर! मेरी बहिरात्म अवस्था व आपकी परमात्म अवस्था में जो अंतर है वह किस प्रकार समाप्त हो सकता है? अर्थात् मैं कैसे आपके समान परमात्म अवस्था प्राप्त कर सकता हूँ? मेरे कर्मों का फल देखकर कोई ज्ञानी पुरुष ही इसे बता सकते हैं।

मूल : पयई ठिई अणुभाग प्रदेश थी रे, मूल उत्तर बहु भेद।
घाती अघाती हो बन्धोदय उदीरणा रे,
सत्ता कर्म विच्छेद ॥पद्म०॥२॥

शब्दार्थ : पयई-प्रकृति, निश्चित फल देने का कर्म का स्वभाव, ठिई-स्थिति, कर्मों के आत्मा के साथ जुड़े रहने की समय स्थिति, अणुभाग-अनुभाव, फल देते समय कर्म का तीव्र या मंद प्रभाव, प्रदेश-मूल व उत्तर प्रकृति अनुसार कर्म के समूह के प्रदेशों का आत्मा के साथ होता मिश्रण, मूल-मुख्य, उत्तर-उप, बहुभेद-अनेक प्रकार का, घाती-मूल गुणों को ढकनेवाले कर्म, ज्ञान-दर्शन-समकित-चारित्र-दान आदि पांच लब्धियों को ढकनेवाले कर्म, अघाती-मूल गुणों के अलावा अन्य गुणों को ढकनेवाले कर्म, अल्प घातीकर्म-अक्षय स्थिति, अक्षय सुख, अरूपी अवस्था, अगुरुलघु पर्याय-इन छोटे गुणों को ढकनेवाले कर्म, बन्ध-आत्मा व कर्मों का मिश्रण, उदय-बांधे हुए कर्मों के फल का उदय होना, उदीरणा-जिस कर्म का फल स्वाभाविक रूप से जब भोगना होता है, उससे पहले फल की प्राप्ति हो, ऐसे कर्मों में होती आत्मा की प्रेरक चाल, सत्ता-कर्मबंधन से कर्म मुक्ति तक उस कर्म का आत्मा के साथ संबंध का अस्तित्व, विद्यमानता, सत्ता कर्म विच्छेद-कर्मों के बंध का, उदय का, उदीरणा का, सत्ता का विच्छेद होना।

भावार्थ : प्रकृति, स्थिति, अनुभाव, प्रदेश अनुसार मुख्य एवं उप भेद के अनुसार

घाती व अघाती, बंध, उदय, उदीरणा, सत्ता तथा उनके कर्म विच्छेद वगेरे प्रकार के कर्म के अनेक भेद हैं।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, आयुष्य, मोहनीय, नाम, गौत्र व अंतराय ये मूल आठ भेद हैं। उनके उपभेद क्रमशः ५-९-२-४-२८-१०३-२-५ कुल १५८ उपभेद हैं।

मूल : कनकोपलवत् पयडी-पुरुष तणी रे, जोड़ी अनादि स्वभाव।
अन्य संजोगी जिहां लगे आतमा रे,
'संसारी' कहेवाय ।।पद्म०।।३।।

शब्दार्थ : कनक-सोना, उपल-पत्थर, पयडी-प्रकृति, कर्म, पुरुष-आत्मा, अनादि-आदि रहित, प्रारम्भ रहित।

भावार्थ : प्रकृति व पुरुष अर्थात् कर्म व आत्मा की जोडी स्वभाव अनुसार अनादि काल से खान में उपलब्ध सोने व पत्थर की तरह मिश्रित बनी हुई है। इस प्रकार जहां तक आत्मा अन्य जड़ पदार्थों के साथ संयोगी होता है तब तक 'संसारी' कहलाता है।

मूल : कारण जोगे हो बांधे बंधने रे, कारण मुगति मूकाय।
'आश्रव' 'संवर' नाम अनुक्रमे रे,
हेय उपादेय सुणाय ।।पद्म०।।४।।

शब्दार्थ : कारण जोगे-कारण सामग्री मिलने के योग से, बांधे-बांधता है, बंधन-कर्म बंधन, मुगति-मुक्ति, मुकाय-मुक्त होना, आश्रव-कर्मों के बंधन का कारण, संवर-कर्म के बंधन को होने से रोकने का कारण, अनुक्रमे-क्रमशः, हेय-त्याज्य, उपादेय-आदर योग्य, सुणाय-सुना जाता है।

भावार्थ : बंधन करण विगेरे कारणों के मिलने के योग से आत्मा कर्म बांधती है तथा मुक्त होने के कारणों के मिलने से आत्मा कर्म मुक्त होती है। कर्म बंधन का कारण 'आश्रव' व कर्म बंधन को रोकनेवाला 'संवर' क्रमशः छोड़ने योग्य व ग्रहण करने योग्य (शास्त्रानुसार) सुना जाता है।

मूल : युञ्जन करणे हो अन्तर तुझ पड्यो रे, गुण करणे करी भंग।
ग्रन्थ उक्ते करी पण्डित जन कह्यो रे,
अन्तर भंग सुअंग ।।पद्म०।।५।।

शब्दार्थ : युञ्जन करणे-आत्मा के साथ कर्मों का मिश्रण होने का कारण, संसार योग्यता, भाव आश्रव, गुण करणे-गुण के विकास रूपी कारण, वह कारण जिससे कर्म बंधन रुकता है तथा भाव संवर का उदय होता है, भंग-नष्ट होता है, ग्रन्थ उक्ते-ग्रंथों की उक्तियों के अनुसार, अंतर भंग सुअंग-अंतर को

नष्ट करनेवाले सुन्दर अंग।

भावार्थ : हे जिनेश्वर देव! संसार योग्यता (भाव आश्रव) अर्थात् कर्मों के बंधने के कारण से आपके परमात्म भाव व मेरे बहिरात्म भाव में अंतर पड़ा है। यह दूरी गुण करण से, भाव 'संवर' के विकास से मोक्ष योग्यता के विकास से ही कम होती है।

शास्त्रों के आधार पर विद्वानजनों का कहना है कि परमात्मपद बहिरात्म पद का अन्तर नष्ट करने का यही (गुणों का विकास) सुन्दर उपाय है।

मूल : तुझ मुझ अन्तर अन्तर भांजशे रे, वाजशे मंगल तूर।
जीव सरोवर अतिशय वाधशे रे,
'आनन्द-घन'-रस-पूर ॥पद्म०॥६॥

शब्दार्थ : अन्तर-आंतरिक, अंतर-भेद, भांजशे-भंग होना, वाजशे-बजना, मंगल तूर-मांगलिक संगीत, अतिशय-अत्यधिक, वाधशे-बढ़ना, भरपूर होना, आनन्द-घन-रस-पूर-आनन्द के भण्डार रूपी रस के भरपूर होने से, बाढ़ आने से।

भावार्थ : श्री आनन्दघनजी महाराज कहते हैं कि हे पद्मप्रभु जिनेश्वर! आपके व मेरे बीच का आंतरिक अंतर-गुण करण से नष्ट होगा। अर्थात् अपन दोनों एक सरीखे बनेंगे। तब आत्मा का मंगल संगीत बजेगा। तथा मेरी आत्मा पूर्ण आनन्द में मग्न होगी। जीव सरोवर में आनन्द रस की बाढ़ आने से मैं भी आपकी तरह, पद्म की तरह निर्मल कांतिवाला होकर महकूंगा।

- यहां दंभपूर्वक व्रत पालन को लोहे की नौका की उपमा दी है। हृदय के परिणाम अलग है, बाहर से आचरण अलग है। वचन अलग है, आचरण अलग है, कोई देखता है तब आचरण अलग है, कोई नहीं देखता तब आचरण अलग है इसी का नाम दंभ है। दंभ के सेवन कर्ता को प्रच्छन्न पापी कहा है।

- हाथ और पैर जिसके कटे हुए हैं, कर्ण एवं मुख की शोभा रूप नासिका छिन्न-भिन्न है और सौ वर्ष की आयु वाली वृद्धावस्था से युक्त है कोई नारी, ऐसी स्त्री का संपर्क, उसको देखना, उससे बातें करनी आदि ब्रह्मचारी व्यक्ति त्याग दे। अर्थात् ऐसी स्त्री से भी बातें करने का, किसी भी प्रकार से संपर्क करने का निषेध किया है।

''समाधान की ज्योत''

७ श्री सुपार्श्व जिन स्तवन

कर्ममुक्त परमात्मा के अपेक्षा सहित अनेक नामों के द्वारा इस स्तवन में भक्ति का स्वरूप दर्शाकर भक्त को परमात्मा बनने का मार्ग दर्शाया है।

मूल : 'श्री सुपार्श्व जिन' वंदिये, सुख संपत्तिनो हेतुः ललना।
शान्त सुधारस जल निधि,
भवसागरमां सेतु ललना ॥श्री०॥१॥

शब्दार्थ : वंदिये-वंदन कीजिए, हेतु-कारण, सुधा-अमृत, निधि-सागर, सेतु-पुल।

भावार्थ : हे भव्य जीवों! श्री सुपार्श्व जिन की भावपूर्वक वंदना कीजिए जो कि आत्मा के सुख व संपत्ति के कारण रूपी शांत अमृत रस जल के सागर व भवसागर में (भव्य जीवों के हेतु) पुल के समान सहायक हैं।

मूल : सात महा भय टालतो, सप्तम जिनवर देव ललना।
सावधान मनसा करी, धारो जिनपद सेव ललना ॥श्री०॥२॥

शब्दार्थ : टालतो-टालनेवाला, मनसा-मानसिक चेतनता, धारो-स्वीकार करो, सेव-सेवा।

भावार्थ : ये सातमें जिनेश्वर देव काम-क्रोध-लोभ-मद-राग-द्वेष-मिथ्यात्व रूपी आत्मा के सात महाभयों को टालनेवाले हैं। अतः सावधानी पूर्वक मन एकाग्र करके जिनदेव के चरणों की सेवा स्वीकारो।

मूल : शिव शंकर जगदीश्वरू चिदानन्द भगवान ललना।
जिन अरिहा तीर्थंकरू
ज्योति स्वरूप असमान ललना ॥श्री०॥३॥

शब्दार्थ : शिव-कल्याणकारी, शंकर-शांतिदायक, जगदीश्वरू-जगत् के ईश्वर, चिदानंद-चित्त के आनन्द युक्त, जिन-राग-द्वेष जीते हुए, अरिहा-काम-क्रोधादि आंतरिक शत्रुओं को हनन करनेवाले, तीर्थंकरू-चतुर्विध संघ रूपी महातीर्थ के संस्थापक, ज्योति स्वरूप-तेजोमय, असमान-अतुलनीय, जिसके समान कोई नहीं।

भावार्थ : श्री आनन्दघनजी महाराज ने प्रभु के अनेक गुणों से संबंधित उनके अनेक नामों का वर्णन करते हुए कहा है कि श्री सुपार्श्वनाथ भगवंत कर्मरूपी उपद्रव के निवारण कर्त्ता होने से शिव, मोक्ष सुख के कर्ता होने से शंकर, जगत् के परमेश्वर होने से जगदीश्वर, चित्त-आत्मा के वास्तविक गुण केवलज्ञान रूपी

आनन्द का उपभोग करने से चिदानंद, महावीतराग व ऐश्वर्यशाली होने से भगवंत, राग-द्वेष के विजेता होने से जिन, अंतरंग शत्रुओं का हनन करनेवाले होने से अरिहंत, द्वादशांगी रूप तीर्थ के प्ररूपक एवं चतुर्विध संघ के संस्थापक होने से तीर्थंकर हैं। आपके समान ज्योति स्वरूप अन्य कोई नहीं है।

मूल : अलख निरंजन वच्छलू, सकल जंतु विसराम ललना।
अभय दान दाता सदा, पूरण आतमराम ललना ॥श्री०॥४॥

शब्दार्थ : अलख-अलक्षित, निरंजन-मैल रहित, वच्छलू-वत्सल, दयालु, विसराम-आश्रय, पूरण-सम्पूर्ण।

भावार्थ : आप श्री बहिरात्म भाव में रहनेवालों से अज्ञात होने से अलख, कर्म मैल से रहित होने से निरंजन, सर्व जीवों के हितेच्छु होने से वात्सल्य वंत, समस्त जीवों के आश्रय स्थल, समस्त भयों से मुक्ति देनेवाले अभय दाता, आत्म सुख में सम्पूर्ण रूप से मग्न जिनेश्वर देव हैं।

मूल : वीतराग मद कल्पना रति अरति, भय सोग ललना।
निद्रा तन्द्रा दुरंदशा रहित, अबाधित योग ललना ॥श्री०॥५॥

शब्दार्थ : वीतराग-राग-द्वेष से रहित, मद-अभिमान, कल्पना-चिन्ता, रति-आनन्द, अरति-कष्ट, भय-डर, सोग-शोक, निद्रा-नींद, तन्द्रा-प्रमाद, दुरंदशा-दुर्दशा, अबाधित-बाधा-रहित, स्थिर, योग-समाधि।

भावार्थ : हे वीतराग देव! आप श्री अभिमान, चिन्ता, सुख, दुःख, भय, शोक, निद्रा, प्रमाद, दुर्दशा आदि समस्त अवगुणों से रहित बाधारहित समाधिस्थ परम पुरुष हैं।

मूल : परम पुरुष परमात्मा परमेश्वर परधान ललना।
परम पदारथ परमेष्ठि परमदेव परमान ललना ॥श्री०॥६॥

शब्दार्थ : परम-श्रेष्ठ, परधान-प्रधान, मुख्य, परमेष्ठि-सर्वोच्च-परमश्रेष्ठ-पद पर बिराजमान, परमान-सर्वश्रेष्ठ सम्मान के पात्र।

भावार्थ : आपश्री सर्वश्रेष्ठ पुरुष, सर्वश्रेष्ठ आत्मा, सर्व जगत् के ईश्वर, मुखिया रूप हैं। जगत् के सर्वश्रेष्ठ पदार्थ परम ईष्ट, मुख्य देव, सब सम्मानों के पात्र हैं।

मूल : विधि विरञ्चिं विश्वंभरुं ऋषिकेश जगन्नाथ ललना।
अघहर अघमोचन धणी,
मुक्ति परम पद साथ ललना ॥श्री०॥७॥

शब्दार्थ : विधि-विधाता, मोक्ष मार्ग के विधाता, विरञ्चिं-ब्रह्मा, विश्वभरूं-विश्व को भरनेवाले, सम्पूर्ण विश्व को ज्ञान गुण से भरनेवाले, ऋषिक-इन्द्रिय, ईश-स्वामी, अघ-पाप, हर-हरनेवाले, मोचन-मुक्त, मुक्ति दिलानेवाले,

धणी-स्वामी, साथ-सुख-दुःख में साथी।

भावार्थ : मोक्ष मार्ग के विधाता, श्रेष्ठ स्वरूप के कर्त्ता, ब्रह्मा, विश्व को ज्ञान गुण से भरनेवाले, इन्द्रियों के स्वामी, जगत् के नाथ, पाप कर्मों का हरण करनेवाले, पाप कर्मों से मुक्त, स्वामी, मुक्ति रूपी परमपद को प्राप्त कराने में सच्चे साथी हैं।

मूल : एम अनेक अभिधा धरे, अनुभव गम्य विचार ललना।
ते जाणे, तेहने करे, 'आनन्द घन' अवतार ललना ॥श्री०॥८॥

शब्दार्थ : अभिधा-नाम, शक्ति, जाणे-जानता है, तेहने-उसको, करे-हाथ में, करना, आनन्द-घन-अवतार-अक्षय मोक्ष में उत्पत्ति।

भावार्थ : इस प्रकार से परमात्मा अनेक नामों को धारण करता है जिन्हें अनुभव से ही अच्छी तरह से समझा जा सकता है। तथा जो जानता है वह उस प्रकार प्रवर्तन करता है व उसे आनन्द घन पद मोक्ष की प्राप्ति होती है।

पारमार्थिक ज्ञान के तीन भेद कहे गये हैं - (१) **विषय प्रतिभास ज्ञान**- सामान्य पहचान, (२) **स्वरूप ज्ञान** - शास्त्रों की सहायता व स्वयं के क्षयोपशम विशेष से विस्तृत जानकारी को पाना, (३) **अनुभव ज्ञान** - साक्षात् अनुभव करना, इसे तत्त्व संवेदनज्ञान व प्रतिभज्ञान भी कहा जाता है।

कवि कहते है कि जो जीव तत्त्व संवेदन ज्ञान की सहायता से परमात्म स्वरूप को साक्षात् अनुभव करके जानता है। वह जीव मोक्ष में अवश्य अवतरित होता है।

- जिस कुत्ती के कानों में घाव होकर कीड़े पड़ गये हों ऐसी कुत्ती किसी घर में जाने लगे तो उसे अति शीघ्रता से बाहर निकाली जाती है। उसी प्रकार सदाचार हीन, शासन प्रत्यनीक, अविनयी एवं असंबंध भाषी इत्यादी शास्त्र विरुद्ध आचरण करनेवाले को सभी स्थानों से अतिशीघ्रता से निष्कासित किया जाता है। ऐसे आत्मा को कुल, गण, संघ से न निकाला जाय तो सडी हुई केरी सभी केरियों की दुर्दशा कर देती है वैसे ही एक आत्मा शास्त्र विरुद्ध आचरण करता है उसकी उपेक्षा की जाती है तब शनैः शनैः सारा गच्छ शास्त्र विरुद्ध आचरण करनेवाला बन जाता है। फिर उस गच्छ को शास्त्र सहमत आचरण, शास्त्र विरुद्ध दिखाई देने लगता है। वहां तक गच्छ की दुर्दशा हो जाती है। अतः शास्त्र विरुद्ध आचरण करनेवाले को अति शीघ्रता से निष्कासित कर देना ही शासन के हित में है।

''समाधान की ज्योत''

८ श्री चन्द्रप्रभ जिन स्तवन

परमात्मा के अनेक नामों की विचारणा को अनुभव गम्य बनाने की हितशिक्षा से परमात्मा के दर्शन की एवं परमात्म स्वरूप बनने की तीव्रता के रूप में सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का स्वरूप इस स्तवन में दर्शाया है।

मूल : देखण दे रे! सखी! मुने देखणे दे 'चन्द्र प्रभ', मुखचन्द।
उपशम रसनो कन्द सखि गत कलि मल दुःख दन्द ॥स०॥१॥

शब्दार्थ : उपशम रस-शान्त रस, कन्द-मूल, गत-गया हुआ, कलि-कलह, मल-मैल, कचरा, दन्द-द्वन्द।

भावार्थ : सम्यग् दृष्टि जीव सुमति (सद्बुद्धि) से कहता है कि हे सखी शांत रस के मूल कारण समान, कलह, मैल, दुःख व द्वन्द से रहित, चन्द्रमा की प्रभा जैसा प्रभायुक्त श्री जिनेश्वर प्रभु का मुख रूपी चन्द्रमा का मुझे दर्शन करने दे।

मूल : सुहम निगोदे न देखियो सखी! बादर अतिहि विशेष स०।
पुढवी आऊ न लेखियो स० तेऊ वाऊ न लेश ॥स०॥२॥

शब्दार्थ : सुहम-सूक्ष्म, निगोद-साधारण वनस्पतिकाय नामक जीव राशि, बादर-स्थूल, अतिहि-अत्यंत, पुढवी-पृथ्वीकाय-पृथ्वी के जीव, आऊ-अप्काय-जल के जीव, तेऊ-तेउकाय, अग्निकाय-अग्नि के जीव, वाऊ-वायुकाय, लेश-जरा, थोड़ा।

भावार्थ : हे सखि! मैंने पूर्वभवों में सूक्ष्म-बादर-निगोद आदि में प्रभुदर्शन नहीं किये हैं, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय, वायुकाय आदि एकेन्द्रियादि जीव रूप में भी लेश मात्र प्रभु मुख नहीं देखा है अतः मुझे प्रभु मुख का दर्शन करने दे।

मूल : वनस्पति अति घण दीहा स०, दीठो नहीं देदार स०।
बि-ति-चउरिन्दिय जल लीहा स०
गत सन्नि पण-धार स०॥च०॥३॥

शब्दार्थ : घण-घणा, अनेक, दीहा-दिनों, देदार-रूप, बि-ति-चउरिन्द्रिय-बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय व चउरिन्द्रिय जल-लीहा-जलचर प्राणी, गतसन्नि-असंज्ञी, पण-धार-पांच इन्द्रियों को धारण करनेवाले।

भावार्थ : वनस्पतिकाय में अनंत काल तक रहते हुए भी मुझे प्रभु का रूप देखने को नहीं मिला। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय जलचर व असंज्ञी पंचेन्द्रिय रूप में भी मैं प्रभुदर्शन नहीं कर पाया हूँ।

मूल : सुर तिरि निरय निवासमां स०, मनु ज अनारज साथ स०।

अपज्जत्ता प्रतिभासमां स०,
चतुर न चढ़ियो हाथ स०॥च०॥४॥

शब्दार्थ : सुर-देव, तिरि-तिर्यंच, निरय-नारकी, अनारज-अनार्य, अपज्जत्ता-अपर्याप्त अवस्था में, प्रतिभास-स्पष्ट समझवाली पर्याप्त अवस्था में, न चढ़ियो हाथ-हाथ न आना, देखने में न आना।

भावार्थ : देव, तिर्यंच व नरक गति में, अनार्य मनुष्यों के साथ में तथा अपर्याप्त व पर्याप्त अवस्था में भी जिनेश्वर देव मेरे हाथ नहीं आयें।

मूल : इम अनेक थल जाणीए स०, दरिसण विणु जिन देव स०।
आगमथी मत जाणीये स०, कीजे निर्मल सेव ।स०॥च०॥५॥

शब्दार्थ : थल-स्थल, स्थान, विणु-बिना, दर्शन-सम्यग् दर्शन, मत-विचार।

भावार्थ : इस प्रकार सम्यग् दर्शन से रहित अनेक स्थल हैं अतः अब आगम के मतानुसार जानकर जिनेश्वर देव की निर्मल सेवा करो। यहां पर दर्शन से तात्पर्य प्रभु के स्थूल मुख दर्शन से ही नहीं बल्कि सम्यग् दर्शन की प्राप्ति से भी है।

मूल : निर्मल साधु भगति लही स०, योग अवंचक होय स०।
क्रिया अवंचक तिम सही स०, फल अवंचक जोय स०।च०॥६॥

शब्दार्थ : लही-प्राप्त करके, वंचक-वंचित, योग अवंचक-गुरु के योग प्राप्ति से रहित नहीं होना, क्रिया अवंचक-शास्त्रानुसार धार्मिक क्रियाओं को करनेवाला, फल अवंचक-क्रियानुसार फल पानेवाला, जोय-जोहना, देखना।

भावार्थ : इस प्रकार सम्यग् दर्शन की प्राप्ति होते ही अनुक्रम से पवित्र साधु व उनकी भक्ति का योग प्राप्त होता है, उससे धार्मिक क्रिया कलापों की प्राप्ति होती है। जिससे जीव फल प्राप्ति से वंचित नहीं रहता है, ऐसा देखा जाता है।

मूल : प्रेरक अवसर जिनवरु स०, मोहनीय क्षय जाय स०।
कामित पूरण सुर तरु स०, 'आनन्द-घन' प्रभु पाय स०।च०॥७॥

शब्दार्थ : कामित-इच्छित, सुरतरु-कल्पवृक्ष।

भावार्थ : उपर्युक्त तीनों योगों में सही अवसर पर श्री जिनेश्वर देव प्रेरक होते हैं जिससे मोहनीय कर्म का नाश होता है कारण कि आनन्द के भंडार जैसे प्रभुजी के चरण इच्छा पूरी करने में कल्पवृक्ष के समान हैं।

९ सुविधिनाथ जिन स्तवन

परमात्म दर्शित सम्यग् दर्शन की प्राप्ति के बाद परमात्मा की द्रव्य-भाव से भक्ति का स्वरूप इस स्तवन में दर्शाया है।

मूल : सुविधि जिणेसर पाय नमीने, शुभ करणी एम कीजे रे।
अति घणों उलट अंग धरीने, प्रह उठी पूजीजे रे ॥सु०॥१॥

शब्दार्थ : सुविधि-श्री सुविधिनाथ नामक नवमें तीर्थंकर भगवान, अच्छी विधि, पाय-चरण, करणी-क्रिया, एम-इस प्रकार, उलट-उल्लास, उमंग, प्रह-सुबह के समय में।

भावार्थ : श्री सुविधिनाथ प्रभु के चरणों में वंदन करके या सुविधि सहित जिनेश्वर देव के चरणों में वंदन करके, प्रभात में उठकर हृदय में अत्यधिक उल्लास सहित प्रभु पूजा रूपी शुभ क्रिया इस प्रकार से करें।

मूल : द्रव्य-भाव-शुचि भाव धरीने, हरखे देहरे जइये रे।
दहत्तिग पण अहिगम सांचवतां,
एक मना धूरि थइये रे ॥सु०॥२॥

शब्दार्थ : द्रव्य-बाहर से, शारीरिक रूप से, भाव-अन्तर से, शुचि भाव-पवित्रता, हरखे-हर्ष सहित, देहरे-देवगृह, जिनमंदिर, दहत्तिग-दशत्रिक, पण अहिगम-पांच अभिगम, एकमना-एकाग्र मन से, धूरि-प्रथम, थइये रे-होना।

भावार्थ : द्रव्य व भाव से पवित्रता धारण करके हर्षपूर्वक जिनमंदिर जाना तथा जाते हुए पहले मन एकाग्र करके दशत्रिक एवं पांच अभिगम की पालना करनी चाहिए।

मूल : कुसुम अक्षत वर-वास सुगन्धि, धूप दीप मन साखी रे।
अंग पूजा पण भेद सुणी इम,
गुरु मुख आगम भाखी रे ॥सु०॥३॥

शब्दार्थ : कुसुम-फूल, अक्षत-चावल, वर वास-उत्तम वासक्षेप, मन साखी-मन की साक्षी में, एकाग्र भावपूर्वक, पण भेद-पांच भेद, आगम भाखी-शास्त्रों में कही गयी।

भावार्थ : पुष्प, चावल, वासक्षेप, सुगंधित धूप व दीपक इन पांच प्रकारों से शास्त्रों में कही गयी अंग पूजा (गुरु मुख से श्रवण कर) मन की साक्षीपूर्वक करे।

मूल : एहनुं फल दोय भेद सुणीजे, अनंतर ने परंपर रे।
आणा पालण चित्त प्रसन्नी,

मुगति सुगति सुर मन्दिर रे ।।सु०।।४।।

शब्दार्थ : एहनुं-इसका, अनंतर-अंतररहित, नजदीक का, परंपर-परंपरा से, क्रमानुसार, आणा-आज्ञा, मुगति-मुक्ति, मोक्ष, सुगति-सद्गति-उत्तम गति, कुल, जाति, वंश में जन्म, सुरमंदिर-देवविमान, देवलोक।

भावार्थ : इस प्रकार से प्रभु पूजा का दो प्रकार का फल सुना जाता है। (१) तुरन्त प्राप्त होनेवाला फल है, जिनेश्वर देव की आज्ञा पालन की भावना तथा आध्यात्मिक विकास में मानसिक प्रसन्नता की प्राप्ति, (२) परंपरा से अनुक्रम से प्राप्त होनेवाले फल हैं सद्गति (मनुष्य जन्म, उत्तम कुल, धर्म) की प्राप्ति देवलोक की प्राप्ति व अंत में संसार चक्र से मुक्ति-मोक्ष की प्राप्ति।

मूल : फूल अक्षत वर धूप पइवो, गन्ध नैवेद्य फल जल भरी रे।
अंग अग्र पूजा मली अडविध भावे,
भविक शुभ गति वरी रे ।।सु०।।५।।

शब्दार्थ : पइवो-प्रदीप, दीपक, जल भरी-जल कलश, अडविध-अष्ट प्रकारी, वरी-वरना, पाना।

भावार्थ : प्रभु के अंग पर करने की व सामने रखकर करने की अंग पूजा व अग्र पूजा (१) पुष्प (२) चावल (३) उत्तम धूप (४) दीपक (५) सुगन्धित चंदन-वासक्षेप (६) नैवेद्य (७) फल व (८) जल पूजा (जल कलश भर कर रखने रूप) सहित आठ प्रकार की है। जो भव्यात्मा भावपूर्वक ऐसी पूजा करता है वह शुभ गति को पाता है।

मूल : सत्तर भेद एकवीस प्रकारे, अठोत्तर शत भेदे रे।
भाव पूजा बहु विध निरधारी, दोहग्ग दुर्गति छेदे रे ।।सु०।।६।।

शब्दार्थ : अठोत्तर शत-एक सौ आठ, भाव पूजा-हृदय से की जानेवाली पूजा, बहुविध-अनेक प्रकार की, निरधारी-निर्धारित की गई है, दोहग्ग-दुर्भाग्य, दुर्गति-खराब गति, स्थिति, छेदे-छेदता है, नष्ट करता है।

भावार्थ : सत्तर भेद से, इकवीस प्रकार से व एकसौ आठ प्रकार से द्रव्य पूजा के कई अलग अलग भेद हैं इसी प्रकार भाव पूजा (चैत्यवंदन, देववंदन, स्तवन, भक्ति) भी अनेक प्रकार की मानी गयी है जो दुर्भाग्य व दुर्गति का नाश करनेवाली है।

मूल : तुरिय भेद पडिवत्ति पूजा, उपशम खीण सयोगी रे।
चउहा पूजा इम उत्तरज्झयणे, भाखी केवल भोगी रे ।।सु०।।७।।

शब्दार्थ : तुरिय-चौथी, पडिवत्ति-प्रतिपत्ति-आज्ञा का पालन रूप, उपशम-उपशांत मोह नामक ११वाँ गुण स्थानक की प्राप्ति, खीण-क्षीण मोह - १२वाँ

*गुण स्थानक की प्राप्ति, **सयोगी**-सयोगी अवस्था-१३वाँ गुण स्थानक की प्राप्ति, चउहा पूजा-चार प्रकार की पूजा, इम-इस प्रकार से, **उत्तरज्झयणे**-उत्तराध्ययन सूत्र में, **भाखी**-कही है, **केवल भोगी**-केवलज्ञान का उपभोग करनेवाले केवलज्ञानी भगवंत ने।*

भावार्थ : स्तवनकार अंग पूजा, अग्रपूजा व भावपूजा के बाद में पूजा का चौथा, अन्तिम व सबसे महत्त्वपूर्ण भेद बताते हुए कहते हैं कि प्रतिपत्ति पूजा-जिनेश्वर देव के उपदेशों के अनुसार नियमों का पालन, जीवन के आचार विचार में जिनाज्ञा का पालन पूजा का चौथा भेद है जो कि उपशांत मोह, क्षीण मोह, सयोगी अवस्था (११, १२ व १३वें गुण स्थानक) की प्राप्ति रूप है। केवलज्ञानी भगवंतों ने उत्तराध्ययन सूत्र में इस प्रकार से पूजा के चार भेद कहे हैं।

मूल : इम पूजा बहु भेद सुणीने, सुखदायक शुभकरणी रे।
भविक जीव करशे ते लहेशे, आनन्द-घन पद धरणी रे॥सु०॥८॥

***शब्दार्थ : लहेशे**-लेगा, प्राप्त करेगा, **आनन्द घन पद धरणी**-आनन्द के समूह रूप पदवाली धरती-मोक्ष-सिद्ध शिला।*

भावार्थ : इस प्रकार से सुख देनेवाली शुभक्रिया रूपी पूजा के अनेक भेदों को सुनकर जानकर जो भव्यात्मा पूजा करेगा, वह अवश्य मोक्ष को प्राप्त करेगा।

- राग के दो भेद हैं। प्रशस्त राग एवं अप्रशस्त राग। प्रशस्त राग अर्थात् आत्मा को उच्चतम स्थान प्राप्त करवाने का उत्तम साधन। राग विष की श्रेणी का है पर वैद्यराजजी उस विष को अनेक प्रक्रियाओं के द्वारा औषधी का रूप दे देते हैं, वैसे ही राग को प्रशस्त राग बनाकर प्रयोग में आचरण में लेने पर वह राग भवरोग मिटाने हेतु उत्तम औषधी का काम करता है।

❋

- आर्तध्यान का उदय छट्ठे गुणस्थानक तक बताया है। प्रमत्त गुण स्थानक तक संकल्प विकल्प होते हैं। पर वे वहां अधिक समय तक रह नहीं सकते, अगर अधिक समय तक रह जाते हैं, तो गुण स्थानक हट जाता है, आत्मा नीचे गिर जाता है, कभी-कभी प्रथम गुण स्थानक तक भी चला जाता है। अतः संकल्प विकल्प उपस्थित होते ही उन्हें दूर करने का पुरुषार्थ, प्रयत्न प्रारंभ कर देना चाहिए।

"समाधान की ज्योत"

१० श्री शीतल जिन स्तवन

यहां से विरति की प्राप्ति के लिए आत्म गुणों का वर्णन प्रारम्भ होता है। उसके पूर्व स्याद्वाद दृष्टि को समझाने के लिए परमात्मा में रहे हुए परस्पर विरोधी धर्मों को स्याद्वाद दृष्टि से समझाया गया है।

मूल : शीतल जिन-पति ललित त्रिभंगी, विविध भंगी मन मोहे रे।
करुणा कोमलता तीक्ष्णता, उदासीनता सोहे रे ॥शी०॥१॥

शब्दार्थ : शीतल-शीतलनाथ तीर्थंकर भगवान, विरोधी स्थिति में भी, समता, शीतलता रखनेवाले जिनेश्वर देव, ललित-मनोहर, त्रिभंगी-तीन तीन भेद वाली, विविध भंगी-अनेक भेद से, मोहे-मोहती है, आकर्षित करती है, करुणा-दया, कोमलता-नरमाई, कोमल मन, तीक्ष्णता-तीखापन, कठोरता, उदासीनता-तटस्थता, सोहे-शोभती है।

भावार्थ : (१) प्रत्येक जीव मात्र के प्रति कोमल दया भावना (२) कर्मनाश में कठोरता (३) भव्य जीव काल परिपाक कारण मिलने से सहजता से सिद्ध होता है अतः दया के चिंतन का क्या काम, कर्म भी सहजता से दूर होते हैं। अतः कोमलता व तीक्ष्णता में मध्यस्थ वृत्ति रूपी उदासीनता, उपर्युक्त तीन तीन परस्पर विरोधी भेदवाली मनोहर प्रकृति से शोभित श्री शीतलनाथ स्वामी मन को मोहनेवाले हैं।

मूल : सर्व जन्तु हित करणी करुणा, कर्म विदारण तीक्ष्ण रे।
हानाऽऽदान रहित परिणामी, उदासीनता वीक्षण रे ॥शी०॥२॥

शब्दार्थ : कर्म-विदारण-कर्मों का नाश करने में, हान-त्याग करना, आदान-ग्रहण करना, उदासीनता-तटस्थता, वीक्षण-देखना।

भावार्थ : तीर्थंकर देव में 'सवि जीव करु शासन रसी' ऐसी (प्राणी मात्र के प्रति) करुणा भावना होती है जिससे वे तीर्थंकर नाम कर्म प्राप्त करते हैं।

अरिहंत-कर्म शत्रुओं को हनन करनेवाला अर्थात् कर्मनाश में तीखापन जिनेश्वर देव का स्वभाव है।

प्रभुजी की साधक दशा मिट जाने से अप्रमत्त भाव में रहने की स्थिति में वे जगत् के सब पदार्थों को तटस्थ भाव से देखते हैं। उनमें किसी का भी त्याग या ग्रहण करने से मुक्त परिणाम वाली उदासीनता की निर्लेप दृष्टि (साक्षी भाव) दिखायी देती है।

मूल : पर दुख छेदन इच्छा करुणा, तीक्ष्ण पर दुख रीझे रे।
उदासीनता उभय विलक्षण एक ठामे केम सीझे रे ॥शी०॥३॥

शब्दार्थ : रीझे-रीझना, राजी होना, खुश होना, उभय-दोनों से अलग प्रकार, ठामे-स्थान पर, सीझे-सिद्ध होना, संभव होना।

भावार्थ : स्तवनकार श्री ने और विस्तार से वर्णन करते हुए प्रश्न किया है कि पराये दुःखों को नाश करने की इच्छा रूप करुणा, पराये दुःखों पर खुश होने रूप तीक्षणता व दोनों प्रकार से भिन्न उदासीनता ये तीनों विरोधाभासी प्रवृत्तियाँ एक ही स्थान पर कैसे घटित होती हैं?

मूल : अभय-दान ते मल क्षय करूणा, तीक्षणता गुण भावे रे।
प्रेरक विण कृति उदासीनता, एम विरोध मति नावे रे॥शी०॥४॥

शब्दार्थ : अभय-निर्भयता, अभयदान-संसार के भयों से मुक्त करना, मल क्षय-कर्म रूपी मल का नाश करना, आत्मा का भाव अभयदान, गुण भावे-गौण रूप से आत्मा की स्वभाव परिणिति, प्रेरक विण कृति-प्रेरणा बिना, सहज रूप से विकसती आत्म परिणति।

भावार्थ : आत्मा में रहा हुआ निर्भयता का भाव जगाना यह परमात्मा की करुणा है। तथा कर्मनाश हेतु तीक्षणता गौणरूप में है।

इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग या अन्य कारणों की प्रेरणा से भी उदासीनता होती है। किन्तु परमात्मा में बिना किसी प्रेरक प्रवृत्ति के सहज कर्त्तव्य निष्ठा रूपी उदासीनता होती है। इस प्रकार से परस्पर विरोध नहीं रहता है।

मूल : शक्ति व्यक्ति त्रिभुवन प्रभुता निर्ग्रन्थता संयोगे रे।
योगी भोगी वक्ता मौनी, अनुपयोगी उपयोगे रे ॥शी०॥५॥

शब्दार्थ : निर्ग्रन्थता-सांसारिक ग्रन्थियों से मुक्त परिग्रह रहित, संयोगे-संयोग से, दो-दो के संयोग से होती तीसरी स्थिति।

भावार्थ : इस गाथा में स्तवनकार ने पांच अन्य त्रिभंगियों का वर्णन किया है।

(१) (i) शक्ति - आत्मद्रव्य का एक स्वभाव, सामान्य धर्म।

(ii) व्यक्ति - प्रत्येक आत्मा ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणानुसार भिन्न भिन्न है अर्थात् आत्मा का स्वयं का व्यक्तित्वपना है।

(iii) शक्ति व्यक्ति रहित - द्रव्य न सामान्य रूप है न विशेष रूप है किन्तु परस्पर सापेक्ष उभय रूप में है अर्थात् सामान्य शक्ति व व्यक्तित्वपने से रहित है।

(२) (i) त्रिभुवन प्रभुता - तीन लोक में पूज्य होने से जिनेश्वर देव तीनों भुवनों के स्वामी कहलाते हैं।

(ii) निर्ग्रन्थता - परम त्यागी होने से, अपरिग्रही होने से निर्ग्रन्थ हैं।

(iii) त्रिभुवन प्रभुता निर्ग्रन्थता रहित - तीन लोक के स्वामी बनने की भावना से रहित होने से न तो वे त्रिभुवन के स्वामी हैं तथा तीर्थंकर देव की

समवसरण अष्ट महा प्रतिहार्य आदि ऋद्धि को देखकर उन्हें त्यागी भी नहीं माना जा सकता, अतः त्रिभुवन प्रभुता व निर्ग्रन्थता से रहित हैं।

(३) (i) योगी - रत्नत्रयी के आराधक साधक होने से योगी।

(ii) भोगी - स्वयं के आत्म गुणों के भोक्ता होने से भोगी।

(iii) योग भोग रहित - मन,वचन, काया के योगों से रहित तथा संसार के भोगों से रहित होने से योग व भोग रहित हैं।

(४) (i) वक्ता - जिनेश्वर देव परम उपदेश देनेवाले वक्ता हैं।

(ii) मौनी - आश्रव संबंधी कथन न करने से मौनी।

(iii) वक्तृत्व मौन रहित - पूर्व में आप जिनेश्वरों द्वारा कहे गये को ही पुनः कहने से, नया कुछ भी नहीं कहने से वक्तृत्व से रहित व बोलते हैं अतः मौन रहित हैं।

(५) (i) उपयोगी - ज्ञान, दर्शन का उपयोग करनेवाले उपयोगी।

(ii) अनुपयोगी - उपयोग सदैव स्वयं संचालित होने से आत्मा व उपयोग का अभेदपना होने सें परमात्मा स्वतः ही अनुपयोगी है।

(iii) उपयोग-अनुपयोग रहित - सिद्ध अवस्था में ज्ञान दर्शन के उपयोग का संभव होने से अनुपयोग रहित व उपयोग के प्रयोग का कोई कारण न होने से उपयोग रहित।

मूल : इत्यादिक बहु भंगा त्रिभंगी, चमत्कार चित्त देती रे।
अचरिज कारी चित्र विचित्रा,
आनन्द-घन पद लेती रे ॥शी०॥६॥

शब्दार्थ : बहुभंग-अनेक भेद वाली, चित्त-मन, अचरिज कारी-आश्चर्य कारक, चित्र-विचित्रा-सामान्य व विशेष तरीके से अलग अलग प्रकार, गहन।

भावार्थ : ऐसे ऐसे अन्य अनेक भेदवाली त्रिभंगियाँ मन को चमत्कृत करती हैं। चित्र व विचित्र होने से आश्चर्यकारक हैं।

इस स्तवन में परस्पर विरुद्ध आभास देती बाबतों की त्रिभंगियाँ बताकर स्यादवाद की सहायता से उनके विरोध दूर करके बताये गये हैं।

स्यादवादी सब जगह विरोध का यथासंभव त्याग करके, यथास्थित वस्तु को समझकर स्थिर भाव में रहता है। अतः स्यादवाद ज्ञान युक्त आत्मा आनन्द घन पद अर्थात् अक्षय सुख के भंडाररूप मोक्ष पद को प्राप्त करती है।

११ श्री श्रेयांशनाथ जिन स्तवन

स्याद्वाद की श्रद्धायुक्त आत्मा मोक्ष के मूल अध्यात्म मार्ग में आगे बढ़ने हेतु अध्यात्म के स्वरूप को समझने की इच्छावाला होने से इस स्तवन में अध्यात्म मार्ग का स्वरूप समझाया है।

मूल : श्री श्रेयांस जिन अन्तरजामी, आतम रामी नामी रे।
अध्यात्म मत पूरण पामी, सहज मुगति गतिगामी रे॥श्री०॥१॥

शब्दार्थ : अन्तरजामी-अन्तर्यामी, अन्दर की बात जाननेवाला, सर्वज्ञ, आत्मरामी-आत्मा में रमनेवाला, नामी-प्रसिद्ध, अध्यात्म मत-आत्म विकास के मार्ग का मत, पूरण-पूरा, पामी-प्राप्त करके, मुगति-मुक्ति, मोक्ष, गामी-गमन किया हुआ।

भावार्थ : हे श्री श्रेयांसनाथ जिनेश्वर! आप अन्तर्यामी, आत्मा में रमण करनेवाले, जगत् में तीर्थंकर रूप में प्रसिद्ध हैं। आत्म विकास के मत को पूर्ण रूप से प्राप्त करके सहजता से (प्रयास रहित) मोक्ष गति में गये हैं।

मूल : सयल संसारी इन्द्रिय रामी, मुनि गण आतमरामी रे।
मुख्य पणे जे आतमरामी ते केवल निष्कामी रे ॥श्री०॥२॥

शब्दार्थ : सयल संसारी-समस्त संसारी जीव, इन्द्रिय रामी-इन्द्रियों के विषयों में आसक्त, केवल-मात्र, निष्कामी-कामना रहित।

भावार्थ : समस्त संसारी जीव इन्द्रियों से सम्बन्धित विषयों में आसक्त होते हैं। मात्र मुनि गण ही आत्मा में रमण करनेवाले होते हैं। मुख्य रूप से जो आत्मा में रमण करनेवाले हैं वे ही कामना रहित (सांसारीक सुखों की ओर उदासीन) हैं।

मूल : निज स्वरूप जे किरिया साधे, ते अध्यातम[१] लहीये रे।
जे किरिया करी चउ गति साधे,
ते न अध्यातम कहीये रे ॥श्री०॥३॥

शब्दार्थ : निज स्वरूप-आत्मा का स्वयं का रूप, साधे-साधता है, प्राप्त करता है, लहीये-जानना, चउगति-तिर्यंच, नरक, मनुष्य व देव-चार गति।

भावार्थ : जिस क्रिया के द्वारा आत्मा का (स्वयं का) शुद्ध रूप प्राप्त होता है, उसे अध्यात्म जानना चाहिए। तथा जिस क्रिया के करने से चारों गति की भव भ्रमणा बढ़ती है उसे अध्यात्म नहीं कहा जाता है।

मूल : नाम अध्यातम ठवण अध्यातम, द्रव्य अध्यातम छंडो रे।
भाव अध्यातम निज गुण साधे,
तो तेहशुं रढ़ मंडो रे ॥श्री०॥४॥

---

१. आत्मानमधिवृत्त्य या शुद्धा क्रिया प्रवर्तते तद्-अध्यात्मम्।
आत्मा के उत्कर्ष को लक्ष बिन्दु बनाकर जो शुद्ध अनुष्ठान किया जाय वह अध्यात्म है।

शब्दार्थ : नाम अध्यातम-ऐसा कोई पदार्थ जिसका नाम अध्यात्म हो, ठवण-स्थापना, ठवण अध्यात्म-अध्यात्म का कोई भी गुण या उससे सम्बन्धित की स्थापना, आकृति-चित्र आदि, द्रव्य अध्यातम-अध्यात्म के कारण, साधन, उसके बाह्य सहायक, उपकरण, धर्म शासन, धर्म संघ, छंडो-छोड दो, भाव अध्यातम-भाव से साक्षात् अध्यात्म, निज गुण-आत्मा के गुण, साधे-साधता है, तेहशुं-उससे, रढ़-दृढ़ता पूर्वक, मंडो-मचना, तल्लीन होना।

भावार्थ : नाम से, स्थापना से व द्रव्य से जो अध्यात्म है इन्हें छोड़ देना चाहिए तथा आत्मा के स्वयं के गुणों को साधनेवाले, प्रकट करनेवाले भाव अध्यात्म में दृढ़ता से तल्लीन होना चाहिए।

(अध्यात्म की विभिन्न चढ़ती हुई सीढ़ियों में आत्मा ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ती है त्यों-त्यों नीचे के स्थानों का त्याग करना चाहिए। आत्मा के गुणों को प्रकट करनेवाले भाव अध्यात्म की प्राप्ति होने पर नाम, स्थापना व द्रव्य अध्यात्म त्यागने योग्य है।)

मूल : शब्द अध्यातम अर्थ सुणीने, निर्विकल्प आदरजो रे।
शब्द अध्यातम भजना जाणी,
हान ग्रहण मति धरजो रे ॥श्री०॥५॥

शब्दार्थ : शब्द अध्यातम-अध्यात्म से संबन्धित शब्द, अध्यात्म शास्त्र, निर्विकल्प-विकल्प रहित स्थिति, आदरजो-स्वीकार करना, भजना-है या नहीं, हान-निषेध, त्याग, ग्रहण-स्वीकार, मति-बुद्धि, धरजो-धारण करना, रखना।

भावार्थ : अध्यात्म शास्त्र रूपी शब्द अध्यात्म को अर्थ सहित सुनकर निर्विकल्प दशा को स्वीकार करें। (भाव अध्यात्म निर्विकल्प दशा को प्राप्त करने के लिए है, शास्त्र तो एक सीमा तक ही सहायक होते हैं। अंत में निर्विकल्प दशा ही अध्यात्म की पराकाष्ठा तक ले जा सकती है।) शास्त्रों में अध्यात्म है भी और नहीं भी है। ऐसा जानकर, समझकर, अर्थ समझकर ग्रहण करने योग्य ग्रहण करना व त्याज्य को त्यागने की बुद्धि रखनी चाहिए।

मूल : अध्यातमी जे वस्तु विचारी, बीजा जाण लबासी रे।
वस्तु गते जे वस्तु प्रकाशे, आनन्द-घन मत वासी रे ॥श्री०॥६॥

शब्दार्थ : बीजा-अन्य, जाण-जानना, लबासी-लेबासी, वेषधारी, ढ़ोंगी, वस्तु गते-वास्तविक रीति से, आनन्द-घन मत वासी-आनन्द के समूह स्वरूप आत्मा के मत में, आध्यात्म के वासी, जानकार।

भावार्थ : जो वस्तु का विचार करनेवाले हैं, समझनेवाले हैं, वे अध्यात्मी है, शेष दूसरों को ढ़ोंगी समझना है। जो वास्तविक रूप से वस्तु का प्रकाश करनेवाले हैं, शुद्ध प्ररूपण करनेवाले हैं वे अध्यात्म के ज्ञाता हैं।

१२ श्री वासुपूज्य जिन स्तवन

त्रिविध चेतनात्मक आत्मा का स्वरूप इस स्तवन में बताया है। इसे समझकर आत्मा मुनि भाव को प्राप्त कर सकता है। तीन चेतना है - ज्ञान चेतना, कर्मचेतना और कर्मफल चेतना।

मूल : वासुपूज्य जिन त्रिभुवन स्वामी घन नामी परणामी रे।
निराकार साकार सचेतन करम,
करम फल कामी रे ॥वा०॥१॥

शब्दार्थ : वासु-वासवों, इन्द्रों, घन नामी-प्रभु रूप में उनकी आत्मा है जो कि घन नामी नित्य है, परणामी-पर-नामी-आत्मा पुद्गल शरीर के संबंध से नाम धारी है अर्थात् परनामी है, करम-कर्म का कर्त्ता होने से कर्म रूप है, करम फल कामी-कर्म फल का भोक्ता होने से कर्मफल कामी है।

भावार्थ : स्तवनकार ने इस स्तवन में आत्मा के स्वरूप का वर्णन किया है। इन्द्रों के पूज्य जिनेश्वर देव (वासुपूज्य जिन) तीनों लोकों द्वारा पूजित होने से त्रिभुवन स्वामी हैं। आत्मा रूप में नित्य तथा शरीर रूप में परनामी हैं। आत्मा आकार रहित व आकारसहित अवस्था में सचेतन है। कर्म रूप है, कर्म फल भोक्ता रूप है। अर्थात् आत्मा द्रव्य नित्य है, परिणामी है। साकार व निराकार रूप से सचेतन है। कर्म रूप है। कर्म फल भोक्ता है।

मूल : निराकार अभेद संग्राहक, भेद ग्राहक साकारो रे।
दर्शन ज्ञान दुभेद चेतना, वस्तु ग्रहण व्यापारो रे ॥वा०॥२॥

शब्दार्थ : अभेद-भेद रहित, अनेक पदार्थों का एक सामान्य गुण, भेद-एक-एक पदार्थ का विशेष गुण, ग्राहक-ग्रहण करनेवाला, दु-दो, वस्तु ग्रहण व्यापारो-पदार्थों को जानने का आत्मा का प्रयत्न।

भावार्थ : प्रत्येक पदार्थ सामान्य तथा विशेष दो प्रकार के गुणधर्मों वाला होता है। आत्मा के पदार्थ का निराकार रूप में सामान्य ज्ञान तथा आकार सहित स्थिति में विशेष ज्ञान होता है।

किसी वस्तु के सम्बन्ध में कुछ वैसा-वैसा है यह सामान्य चेतना है तथा यह इस प्रकार का है यह विशेष चेतना है। अतः क्रमशः दर्शन व ज्ञान दो प्रकार से आत्मा की चेतना है।

मूल : कर्त्ता परिणामी परिणामो कर्म, जे जीवें करीए रे।
एक अनेक रूप नय वादे, नियते नर अनुसरीये रे ॥वा०॥३॥

शब्दार्थ : कर्त्ता-करनेवाला, परिणामी-परिणाम पानेवाला, परिणामो-पर्यायो, भावो, रूपान्तरो, कर्म-आत्मा राग-द्वेष आदि के कारण से जो क्रिया करती है उसके फल स्वरूप आत्मा के साथ चिपकनेवाली कार्मण वर्गणा, जे जीवे करिए-जीव द्वारा जो किया जाता है, नय वादे-नयवाद की अपेक्षा से, नियते-निश्चित, नर-आत्मा, अनुसरिये-अनुसरण करना, समझना।

भावार्थ : परिणामी द्रव्य सदैव स्व-पर्यायों का कर्ता (उत्पादक व विनाशक) होता है। कर्म जो जीव करता है वह आत्मा के राग-द्वेष रूपी परिणामों के रूप में भाव कर्म है जिसके फलस्वरूप कार्मण वर्गणा आत्मा के साथ चिपकती है, वह द्रव्य कर्म है। इस प्रकार से कर्म के एक व अनेक रूपों को, प्रकारों को, नयवाद की दृष्टि से, नयवाद का अनुसरण करके आत्मा को कर्म के निश्चित स्वरूप को समझना चाहिए

मूल : दुःख सुख रूप कर्म फल जाणो, निश्चे एक आनन्दो रे।
चेतनता परिणाम न चूके, चेतन कहे जिन चंदो रे ॥वा०॥४॥

शब्दार्थ : निश्चे-निश्चय नय से, चेतनता परिणाम-चेतनपना, चेतन की चेतनता ही उसका परिणाम है, न चूके-छोड़े नहीं, चेतन-आत्मा, जिन चदो-चंद्र सम जिनेश्वर प्रभु।

भावार्थ : व्यवहार नय से दुःख रूप या सुख रूप कर्म के फल जानने चाहिए, निश्चय नय से तो आत्मा निज स्वभाव का कर्ता होने से आनंदमय ही है।

चेतन स्वयं के चेतनता रूप फलों को कभी नहीं छोड़ता है ऐसा चन्द्र समान श्री जिनेश्वर प्रभु कहते हैं।

मूल : परिणामी चेतन परिणामो, ज्ञान करम फल भावि रे।
ज्ञान कर्म फल चेतन कहीये, लेजो तेह मनावी रे ॥वा०॥५॥

शब्दार्थ : परिणामी-परिणाम पानेवाला, परिणाम स्वरूप, ज्ञान करम फल भावि-ज्ञान परिणति, कर्म परिणति, कर्म फल परिणति, ज्ञान-करम-फल चेतन-ज्ञान चेतना, कर्म चेतना, फल चेतना, कहीये-कहलाती है, लेजो तेह मनावी-उसे मना लेवे, समझ लेवे, मान लेवे।

भावार्थ : आत्मा परिणाम स्वरूप है। ज्ञान रूप, कर्म रूप व कर्म के फल रूप होनेवाले तीन प्रकार के परिणाम है। स्व परिणाम, स्वरूप में आत्मा परिणमता है। अतः इसे ज्ञान चेतना, कर्म चेतना व कर्म फल चेतना कह सकते हैं। बोध-रूप ज्ञान चेतना, राग-द्वेष रूप कर्म चेतना तथा कर्म का फल फल चेतना कहलाती है। यह सब सूक्ष्मता से जान लेवें।

मूल : आतम ज्ञानी श्रमण कहावे, बीजा तो द्रव्य लिंगी रे।

वस्तु गतें जे वस्तु प्रकाशे, आनन्द-घन मत संगी रे ॥वा०॥६॥

शब्दार्थ : आतम ज्ञानी-आत्मा को जाननेवाला, श्रमण-मुनि, द्रव्य लिंगी-बाह्य वेशधारी।

भावार्थ : आत्मा को, आत्मा के शुद्ध स्वरूप को, दर्शन ज्ञान चरित्र रूपी आत्म ज्ञान को जाननेवाला ही 'मुनि' कहलाता है। दूसरे तो बाह्य वेशधारी ही हैं। वस्तु को यथार्थ रूप में प्रकाशित करनेवाले ही आनन्द-घन मत रूपी मुक्ति पथ के संगी साथी हैं।

- कच्चे घडे में डाला हुआ पानी जिस प्रकार घडे का एवं पानी का विनाश करनेवाला होता है, उसी प्रकार अपात्र में उपदेश का दान विनाशक बनता है। अपात्र को उपदेश देने से वह उपदेश उसके लिए मिथ्यात्व वर्धक बनता है, द्वेष बढ़ जाता है, गोचरी पानी में भी कभी अन्तराय हो जाता है, कभी-कभी अपात्र व्यक्ति, देशना श्रवण करने पर स्वयं के मन्तव्यानुसार देशना न होने से क्रोधित बनकर मारक भी बन जाता है। अतः अपात्र को देशना नहीं देनी चाहिए। सुपात्र को देशना देनी चाहिए। सुपात्र में देशना देना हितावह है और वही देशना-उपदेश शुद्ध कहा गया है।

- श्रोता को जिनवाणी श्रवण करने पर भी जिनवाणी पर श्रद्धादि न हो तो उसे कोई लाभ नहीं होता। कम से कम इन शब्दों के श्रवण से मुझे लाभ होगा, यह मेरे हित के लिए हैं ऐसी भावना पूर्वक नमस्कार महामन्त्रादि का श्रवण या धर्मोपदेश का श्रवण हितकारी हो सकता है।

  उपदेशक के लिए भी स्व-पर उपकार बुद्धि से उपदेश दे तो नियमा लाभ कर्ता बताया है। उपदेशक उपदेश देते समय अहंकार का पोषण करता है, मात्सर्यता धारण करता है, राग या द्वेष भाव से उपदेश देता है, तो उसे भी कोई लाभ नहीं होता। विपरीत नुकसान हो जाता है। अतः उपकार बुद्धि से हित शिक्षा देने की योग्यता प्राप्त करने के बाद हित शिक्षा अवश्य देनी चाहिए।

''समाधान की ज्योत''

१३ श्री विमलनाथ जिन स्तवन

इस स्तवन में भक्त हृदय की परमात्मा की भक्ति युक्त स्तुति-स्तवना करने में आयी है।

मूल : दुःख दोहग्ग दूरे टल्यां रे, सुख संपद शुं भेट।
धींग धणी माथे कियो रे, कुण गंजे नर खेट ।
विमल जिन दीठां लोयण आज,
मारां सिद्ध्यां वांछित काज ॥वि०॥१॥

शब्दार्थ : दुःख दोहग्ग-दुःख दुर्भाग्य, दुख व पाप कर्म, सुख-प्रभु दर्शन से उत्पन्न उल्लास रूप सुख, संपद-रत्नत्रय रूपी सम्पत्ति, भेट-मिलना, धींग-धींगो, मोटो, महान, धणी-स्वामी, माथे कियो रे-स्वीकार करना, कुण-कौन, गंजे-पराधीन होवे, नर खेट-मामूली मनुष्य से, विमल जिन-श्री विमलनाथ नामक तेरहवें जिनेश्वर देव, कर्म मल रहित, निर्मल, जिनेश्वर प्रभु, दीठां-देखे, लोयण-लोचन, आंखों से, मारां-मेरे, सिद्ध्या-सिद्ध हुए, वांच्छित काज-मनोकामनाएँ।

भावार्थ : मैंने आज कर्म मल रहित जिन देव के दर्शन किये हैं जिससे मेरे इच्छित कार्य सफल हो गये हैं। मेरे दुःख तथा दुर्भाग्य नष्ट हो गये हैं। प्रभु दर्शन का उल्लास रूप सुख व रत्नत्रयी संपत्ति की प्राप्ति हुई है। महान स्वामी को सिर पर स्वीकार करने के पश्चात् कौन सामान्य मनुष्य से पराजित हो सकता है।

मूल : चरण कमल कमला वसे रे, निर्मल थिर पद देख।
समल अथिर पद परिहरि रे, पंकज पामर पेख ॥वि०॥२॥

शब्दार्थ : चरण कमल-चरण रूपी कमल, कमला-लक्ष्मी, वसे-निवास करे, निर्मल-मल रहित, थिर-स्थिर, स्थायी पद, पंकज-कीचड़ से उत्पन्न, पामर-मामूली निम्न, पेख-जानो।

भावार्थ : कीचड़ में उत्पन्न कमल को निम्न, मल से उत्पन्न, नाशवान व अस्थिर जानकर, लक्ष्मी ने उसका त्यागकर, प्रभु के चरणों में (मल रहित व स्थिर होने से) निवास किया है। अर्थात् प्रभु के चरणों में त्रिभुवन की शोभा उपस्थित हो गयी है।

मूल : मुज मन तुज पद पंकजे रे, लीनो गुण मकरन्द।
रंक गणे मन्दर धरा रे, इन्द्र चन्द्र नागिन्द्र ॥वि०॥३॥

शब्दार्थ : पद पंकज-चरण रूपी कमल, लीनो-लीन हुआ, मकरन्द-सुगन्ध, पुष्प के रज कण, रंक-तुच्छ, गरीब, मन्दर धरा-मेरु पर्वत की शोभादायक धरती, इन्द्र चन्द्र नागिन्द्र-इन्द्र, चन्द्र, नागेन्द्र।

भावार्थ : हे प्रभु! आपके गुणों रूपी सुगंध ले आकर्षित होकर मेरा मन आपके चरण कमलों में लीन हो गया है तथा उस पर मुग्ध होकर मेरु पर्वत की शोभामयी धरती व इन्द्र, चन्द्र तथा नागेन्द्र को भी तुच्छ गिनता है।

मूल : साहिब समरथ तुं धणी रे, पाम्यो परम उदार।
मन विसरामी वालहो रे, आतमचो आधार ॥वि०॥४॥

शब्दार्थ : साहिब-पूज्य को सम्मानजनक संबोधन, समरथ-समर्थ, धणी-स्वामी, पाम्यो-प्राप्त किया, मन विसरामी-मन के विश्राम रूप, मन को शांतिदायक, वालहो-व्हाला, प्यारा, आतमचो-आत्मा के आत्म स्वरूप की प्राप्ति के, आधार-अवलम्बन।

भावार्थ : हे पूज्य! आपके जैसा समर्थ, परम उदार, मन की शांति समान, व्हाला प्यारा तथा आत्मा के आधार रूप-आत्म स्वरूप की प्राप्ति के आधार रूप जिनेश्वर देव को मैंने स्वामी रूप में प्राप्त किया है।

मूल : दरिसण दीठे जिन तणुं रे, संशय न रहे वेध।
दिन कर कर भर पसरंता रे, अन्धकार प्रतिषेध ॥वि०॥५॥

शब्दार्थ : दरिसण-दर्शन, दीठे-देखना, दर्शन करना, जिन तणुं-जिनेश्वर देव का, वेध-आड़, बाधा, दिनकर-सूर्य, कर भर-किरणों का समूह, पसरतां-प्रसार होता है, फैलना, प्रतिषेध-नष्ट होना।

भावार्थ : मन के अश्रद्धा, अविश्वास, मिथ्यावासना, अज्ञान, मोह आदि आत्म विकास में बाधक समस्त संशय आपके साक्षात् दर्शन से नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार सूर्य के किरण समूहों के फैलते ही अन्धकार का नाश होता है।

मूल : अमिय भरी मूरति रची रे, उपमा न घटे कोय।
शान्त सुधारस झीलती रे, निरखत तृप्ति न होय ॥वि०॥६॥

शब्दार्थ : अमिय-अमृत, उपमा न घटे कोय-जिसके योग्य कोई उपमा नहीं है, अनुपम, निरखत-देखते हुए।

भावार्थ : स्तवनकार श्री ने अपने हृदय का समस्त भक्ति रस उड़ेलते हुए कहा है कि अमृत रस से रचित अनुपम, शांत सुधारस से भरपूर आपकी आकृति प्रतिमा के दर्शन करते हुए जीव को तृप्ति भी नहीं होती है। दर्शन की चाहना जीव को बराबर बनी रहती है।

मूल : एक अरज सेवक तणी रे, अवधारो जिन देव।
कृपा करी मुज दीजिये रे, आनन्द-घन पद सेव ॥वि०॥७॥

शब्दार्थ : अरज-निवेदन, अवधारो-स्वीकार करो, आनन्द-घन पद सेव-परमात्म पद की सेवा।

भावार्थ : हे जिनेश्वर देव! इस सेवक का एक निवेदन स्वीकार करें कि मुझे परमात्म पद की सेवा का अवसर देने की कृपा करें।

१४ श्री अनन्तनाथ जिन स्तवन

इस स्तवन में वचनानुष्ठान रूपी योग का स्वरूप दर्शाते हुए साधक से कहा है कि-मोक्ष साधिका संपूर्ण क्रिया जिनाज्ञानुसार होगी तो ही कर्मनाशक बनेगी अन्यथा संसार वर्द्धक भी बन सकती है।

मूल : धार तलवारनी सोहिली दोहिली,
चौदमा जिन तणी चरण सेवा।
धार पर नाचता देख बाजीगरा,
सेवना-धार पर रहे न देवा ॥धा०॥१॥

शब्दार्थ : सोहिली-सरल, सहज, दोहिली-अति कठिन, चरण सेवा-चरणों की सेवा, उनके द्वारा प्रतिपादित आचार विचार चरित्र का पालन, बाजीगरा-नट, बाजीगर, सेवनाधार-सेवा रूपी धार।

भावार्थ : चौदहवें जिनेश्वर देव की चरण सेवा अर्थात् उनके धर्म का पालन, चरित्र का पालन अत्यधिक कठिन है। उसकी तुलना में तलवार की धार पर चलना भी सरल है। तलवार की धार पर नट नृत्य कर लेते हैं पर जिनेश्वर देव की सेवा रूपी धार पर देवता भी असफल रहते हैं।

मूल : एक कहे 'सेविये विविध किरिया करी',
फल अनेकान्त लोचन न देखे।
फल अनेकान्त किरिया करी बापड़ा,
रडवडे चार गतिमांहि लेखे ॥धा०॥२॥

शब्दार्थ : अनेकान्त-लक्ष्य के अनुसार कार्य न होना, फल के साथ में असम्बन्धित, लोचन-आँख, दृष्टि, फल अनेकान्त किरिया-फल से असम्बन्धित क्रिया, बापडा-बेचारा, रडवडे-रखड़ना, चार गतिमांहि लेखे-नरक, तिर्यंच, मानव एवं देव चार गति के भव भ्रमण में।

भावार्थ : कोई कहता है कि विविध प्रकार से क्रिया, अनुष्ठान करके प्रभु सेवा करे।

वे अनेकान्त नामक हेत्वाभास दोष के कारण से क्रिया के लक्ष्य व फल के असम्बन्ध को आँखों से नहीं देख रहे हैं। तथा लक्ष्य से असम्बन्धित क्रिया (नियाणारूपी विष व गरल क्रिया) करके तपोबल से देव गति तक प्राप्त करते हैं। पर फिर भी उन्हें चारों गति के भव भ्रमण से मुक्ति नहीं मिलती है। एक दिशा में जाने की इच्छा रखनेवाला यदि लगातार अन्य दिशा में चलता रहे तो केवल चलते रहने से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती है।

तद् हेतु क्रिया व अन्त में अमृत क्रिया ही मोक्ष का अनन्तर कारण है।

मूल : गच्छना भेद बहु नयणे निहालतां,
तत्त्व नी वात करतां न लाजे।
उदर भरणादिक निज काज करतां थकां,
मोह नडिया कलि काल राजे ॥धा०॥३॥

शब्दार्थ : निहालतां-देखते हुए, न लाजे-लज्जा न आना, उदर भरणादिक-पेट भरने के हेतु से, निज-स्वयं का, काज-काम, मोह नडिया-दर्शन मोहनीय एवं चारित्र मोहनीय कर्म से घिरे हुए, कलि काल राजे-कल युग के राज्य में, पाँचवा आरा के समय में।

भावार्थ : इस कल युग के समय में मत मतान्तर के अनेक भेदों को देखते हुए आभास होता है कि मोहनीय कर्मों से घिरे हुए वेशधारी साधु रूप धारण करके भी स्वयं के पेट भरने हेतु, स्वयं के कार्यों हेतु, स्वार्थों हेतु अज्ञानमय, कुतर्क पूर्ण मतभेद फेलाते हैं, उन्हें तत्त्व की बात करते हुए भी लज्जा नहीं आती है।

इस गाथा के द्वारा स्तवनकार श्री ने कहने का प्रयास किया है कि केवल संसार और गृहस्थी का त्याग करने से, साधुपना स्वीकार करने से ही (जिनेश्वर देव के चरणों की शुद्ध सेवा) प्राप्त चारित्र का पालन सुलभ नहीं है।

मूल : वचन निरपेक्ष व्यवहार जूठो कहयो,
वचन सापेक्ष व्यवहार साचो।
वचन निरपेक्ष व्यवहार संसार फल,
सांभली, आदरी, कांई राचो ॥धा०॥४॥

शब्दार्थ : वचन-जिनेश्वर देव प्ररूपित धर्म वचन, निरपेक्ष-असंगत, व्यवहार-आचरण, सापेक्ष-सम्बन्धित, संगत, अनुकूल, संसारफल-सांसारिक फल, भव भ्रमण बढ़ाने वाला, आदरी-आदर करके, पालन करके, कांई राचो-क्यों रुचि करते हो?

भावार्थ : जिनेश्वर देव के वचनों से असंगत व्यवहार झूठा कहा गया है। तथा उनकी आज्ञानुसार व्यवहार ही सत्य है, मुक्ति की कामना वाले जीव के लिए लाभदायी है। जिन वचनों से असंगत व्यवहार सांसारिक फलों को देनेवाला है।

अतः ऐसे संसार फलदायक क्रिया को सुनकर आचरण करने में क्यों रुचि रखते हो?

मूल : देव गुरु धर्म नी शुद्धि कहो किम रहे?
किम रहे शुद्ध श्रद्धान आणो?
शुद्ध श्रद्धान विण सर्व किरिया करी,

छार पर लिंपणु तेह जाणो ॥धा०॥५॥

शब्दार्थ : शुद्धि-शुद्ध भक्ति, सम्यग् आदर, किम-कैसे, शुद्ध श्रद्धान-सम्यक्त्व, शुद्ध श्रद्धा गुण, आणो-आया हुआ, प्राप्त किया हुआ, विण-बिना, अभाव में, छार-खार, उसर भूमि, राख, लिंपणु-लेप, प्लास्तर।

भावार्थ : वचन सापेक्ष व्यवहार के अभाव में देव गुरु धर्म की शुद्ध भक्ति कैसे रहे? कैसे शुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति हो? शुद्ध सम्यक्त्व के बिना की गयी समस्त क्रियाएँ चारे पर किये गये लींपण के समान असफल हैं।

मूल : पाप नहीं कोई उत्सूत्र भाषण जिस्यो,
धर्म नहीं कोई जग सूत्र सरिख्यो।
सूत्र अनुसार जे भविक किरिया करे,
तेहनो शुद्ध चारित्र परिख्यो ॥धा०॥६॥

शब्दार्थ : उत्सूत्र-शास्त्र विरुद्ध, जिस्यो-जैसा, जग-जगत् में, सूत्र-आगमानुसार परमार्थ श्रुतरूप-परमात्मा उपदेशित आगम सूत्र, भविक-भव्यात्मा, परीखो-परखो, जानो।

भावार्थ : शास्त्र विरुद्ध भाषण के समान कोई पाप नहीं है तथा परमात्मा उपदेशित सूत्र के जैसा अन्य कोई धर्म नहीं है जो भव्यात्मा शास्त्र संगत क्रिया करता है उसका सम्यक् चारित्र जानो।

इस गाथा में कवि ने प्रमत्त जीवों की अपेक्षा से शास्त्र अनुसार आचरण पर बल देते हुए कथन कहा है।

मूल : एह उपदेशनो सार संक्षेप थी, जे नरा चित्तमां नित्य ध्यावें।
ते नरा दिव्य बहु काल सुख अनुभवी,
नियत आनन्द-घन राज पावे ॥धा०॥७॥

शब्दार्थ : सार-रहस्य, नरा-नर, मानव, दिव्य-दैविक, अलौकिक, नियत-अवश्य, निश्चित, आनन्द-घन राज-मोक्ष।

भावार्थ : सर्व उपदेशों के संक्षिप्त सारांश को उपर कहा गया है। जो मानव उसे नित्य मन में धारण करता है, उसे आदर्श रूप में रखकर आचरण करता है, वह मानव भवस्थिति परिपक्व न होने तक दैविक सुखों का उपभोग करके निश्चित रूप से मोक्ष की प्राप्ति करता है।

आत्मज्ञानी भव्यात्मा आत्म विकास का मोक्ष तक का विकास क्रम ज्ञान योग से समझकर क्रिया योग से विकास यात्रा करता है। क्रिया योग की पूर्णता पर ध्यान योग की प्राप्ति होती है तथा परिणामतः मुक्ति योग की प्राप्ति होती है। कैसी क्रिया मोक्ष साधिका है, उसका वर्णन उपर्युक्त स्तवन में किया गया है।

आत्मा की प्रमत्त अवस्था प्रथम गुण स्थानक से प्रारम्भ होकर छट्ठे गुणस्थानक तक होती है। सातवें अप्रमत्त गुणस्थानक के आने के बाद भी आत्मा के प्रमत्त गुणकारी अनेक फलों तथा उससे वापस नीचे यहाँ तक कि पहले गुणस्थानक तक आने की सम्भावना रहती है।

सर्व विरति चारित्र ग्रहण कर लेने के बावजूद भी प्रमत्त भाव के कारण से माया, नियाणा, असंगत क्रिया, सम्प्रदाय भेद मनोवृत्ति, निंदकत्व, असंगत तत्त्व, निजी स्वार्थ हेतु धर्म या धार्मिक वेश का दुरुपयोग, शास्त्र निंदित व्यवहार का पालन व प्रतिपादन, सम्यक्त्व का अभाव, उत्सूत्र भाषण आदि अनेक भयस्थान उपस्थित है। अतः महान ज्ञानी महाराज ने इस स्तवन के द्वारा इन भयस्थानों की ओर ध्यान आकर्षित किया है।

- निन्दनीय कुल में रहनेवाला शकुन शास्त्र का वेत्ता भी निंद्य होता है, चतुर्दश विद्या का ज्ञाता भी निंदनीय कुल में हो तो निंद्य होता है। वैसे ही कुशीलवानों के साथ रहनेवाला सुविहित साधु भी अवन्दनीय होता है।

- जिनशासन में देह, कुल, जाति वंदनीय नहीं है। गुण हीन आत्माओं को वन्दन कौन करे? अर्थात् ऐसे वेश विडंबक आत्माओं को कोई वन्दना नहीं करता क्योंकि आचार विचार से हीन, श्रद्धा से भ्रष्ट आत्मा न तो श्रमण है, न श्रावक है। श्रमणाभास आत्माओं को वन्दना कर के स्वयं को दुर्गतियों का अतिथि बनाता है।

- जो आत्मा ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट है, असंयमी है, ऐसा आत्मा ब्रह्मचारी, संयमी, सुसाधु के द्वारा की जानेवाली वंदना को स्वीकार करता है, वन्दना करने के लिए उन पर दबाव करता है। अपने बडप्पन का अधिकार जमाता है, व उनसे वन्दना करवाता है, तो आनेवाले भवों में नरकादि के दुःख भोगने के साथ मानव तिर्यंच के भवों में चला जावे तो हाथ पैरों से हीन अंगवाला होता है और उसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ हो जाती है। अनन्त काल तक संसार में परिभ्रमण करना पड़ता है।

''समाधान की ज्योत''

१५ श्री धर्मनाथ जिन स्तवन

इस स्तवन में धर्म शब्द की व्याख्या व्यवहार एवं निश्चय नय को लक्ष्य में रखकर दर्शाने में आयी है। इसे सूक्ष्म बुद्धि पूर्वक समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

मूल : धर्म जिनेश्वर गाउं रंग शुं, भंग म पडशो हो प्रीत जिनेश्वर।
'बीजो मन मन्दिर आणुं नहीं',
ए अम कुल वट रीत जिनेश्वर ॥ध०॥१॥

शब्दार्थ : धर्म जिनेश्वर-धर्मनाथ नामक पन्द्रहवे तीर्थंकर भगवन्त, धर्म के जिनेश्वर, रंग शुं-उल्लास से, खुशी से, भंग-बाधा, म-नहीं, आणुं-लाना, बुलाना, स्थापना, अम-हमारा, कुल वट-कुल रूपी वट।

भावार्थ : कवि अनन्य समर्पण भाव व्यक्त करते हुए कहता है कि मैं धर्मनाथ नामक प्रभु का (गुणों का) उल्लासपूर्वक गायन करता हूँ। मेरी इस प्रीति में भंग नहीं पड़े अतः हमारे कुल की रीति के अनुसार मैं मन मन्दिर में किसी दूसरे को स्थापित नहीं करूँगा।

मूल : धरम धरम करतो जग सहु फिरे, धर्म न जाणे हो मर्म जिनेश्वर।
धरम जिनेश्वर चरण ग्रह्या पछी,
कोई न बांधे हो कर्म जिनेश्वर ॥ध०॥२॥

शब्दार्थ : मर्म-रहस्य, ग्रह्या-ग्रहण करना, पछी-बाद में।

भावार्थ : जगत् में धर्म-धर्म करते हुए सब फिरते हैं, किन्तु धर्म का रहस्य कोई नहीं जानता। धर्मनाथ जिनेश्वर प्रभु के चरण ग्रहण करने पर, उनके चारित्र का पालन करने के पश्चात् कोई भी कर्म नहीं बांधता है।

मूल : प्रवचन अञ्जन जो सद्गुरु करें, देखे परम निधान जिनेश्वर।
हृदय नयन निहाले जग धणी,
महिमा मेरु समान जिनेश्वर ॥ध०॥३॥

शब्दार्थ : प्रवचन-उत्तम वचन, आत्म हितकारी प्रभु की उपदेश वाणी, अञ्जन-आँखों का अञ्जन, परम निधान-बड़ा से बड़ा भंडार, गुणों की खान, निहाले-देखे, जग धणी-जगत् का स्वामी।

भावार्थ : सद्गुरु भगवंत मेरे नयनों में प्रवचन रूपी अंजन कर ले। अर्थात् मुझे आगम का ज्ञान प्राप्त करवा दे तो मुझे आगमों का रहस्य रूप परम निधान प्राप्त हो जाय और मैं हृदय नयन से मेरु सम महिमावंत जगत् के स्वामी जिनेश्वर के

वास्तविक दर्शन करूं।

मूल : दोडत दोडत दोडत दोडियो, जेती मननी रे दोड जिनेश्वर।
प्रेम प्रतीत विचारो ढुकडी,
गुरु गम लेजो रे जोड जिनेश्वर ॥ध०॥४॥

शब्दार्थ : दोडियो-दौड़ना, आगे बढ़ना, जेती-जितनी, दोड-वेग, प्रतीत-विश्वास, ढुंकडी-नजदीक, गुरु गम-सद्गुरु से मिलना, मार्गदर्शन, जोड-जोड़ना, साथ लेना।

भावार्थ : महा महिमावंत प्रभु का अंतर के नयनों से दर्शन होते ही आत्मा को मन के पूरे वेग से, सद्गुरु के मार्गदर्शन अनुसार परमात्मा के निकट पहुँचने की दौड़ लगानी चाहिए। (सद्गुरु के मार्गदर्शन के अभाव में मार्ग भूलने के अवसर रहते हैं, तथा दौड़ में आलस से बीच में अटकने का या वापस पीछे आने का भय रहता है।) अतः लगातार दौड़ते रहना, आगे बढ़ते रहना। परमात्मा के तरफ की गति व परिणाम दोनों की एकता ही परमात्मा के ऊपर की सच्ची प्रीति है, यही प्रेम, विश्वास है।

मूल : एक पखी प्रीति किम परवडे? उभय मिल्या होय संधि जिनेश्वर।
हुं रागी हुं मोहे फंदियो, तुं नीरागी निरबंध जिनेश्वर ॥ध०॥५॥

शब्दार्थ : एक पखी-एक पक्षीय, किम-कैसे, परवडे-निभना, उभय-दोनों पक्ष, फंदियो-फंदे में पड़ा हुआ, बंधनयुक्त, नीरागी-राग-द्वेष रहित, निरबंध-बंधन रहित।

भावार्थ : हे जिनेश्वर देव! एक पक्षीय प्रीति कैसे निभ सकती है? दोनों समान पक्षों के मिलने से ही संधि होती है। मैं राग-द्वेष युक्त मोह के बंधनों से बंधा हुआ हूँ। तथा आप राग-द्वेष रहित, बंधन रहित जिनेश्वर है। यहाँ आत्म का कथन है कि जब तक मैं भी आपके समान बंधन रहित नहीं हो जाता हूँ, तब तक प्रीति शाश्वत नहीं हो सकती।

मूल : परम निधान प्रगट मुख आगले, जगत उल्लंघी हो जाय जिनेश्वर।
ज्योति बिना जुओ जगदीशनी,
अंधो अंध पुलाय जिनेश्वर ॥ध०॥६॥

शब्दार्थ : परम निधान-महा महिमावंत गुणों के भंडार परमात्मा, आगले-सम्मुख, सामने, उल्लंघी-उल्लंघन करना, जुओ-देखो, जगदीश-जगत् के ईश, अंधो अंध पुलाय-अंधे का अंधे के पीछे चलना।

भावार्थ : परमात्मा साक्षात् प्रगट है किन्तु ज्ञान ज्योति के बिना जगत् के ईश्वर के दर्शन हेतु सम्पूर्ण जगत् का उल्लंघन कर ले, खोज ले, तो भी दर्शन नहीं होते हैं,

जैसे अंधा अंधे का अनुसरण करने से वाच्छिंत कार्य की सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता है।

मूल : निर्मल गुण मणि रोहण भू धरा, मुनि जन मानस हंस जिनेश्वर।
धन्य ते नगरी! धन्य वेला! घड़ी!,
मात! पिता! कुल! वंश! जिनेश्वर ॥ध०॥७॥

शब्दार्थ : रोहण-रोहण नामक, भू धरा-पर्वत।

भावार्थ : निर्मल गुणों रूप मणियों से युक्त, रोहण नामक पर्वत समान महान् मुनि जनों के मानस के हंस-समान हे जिनेश्वर प्रभु! आपके कारण से, वह नगरी, समय, घड़ी व माता, पिता, कुल, वंश सब धन्य हुए जहाँ आपका वास रहा।

मूल : मन मधु कर वर कर जोड़ी कहे–
पदकज निकट निवास जिनेश्वर।
घन नामि! आनन्द–घन! सांभलो,
ए सेवक अरदास जिनेश्वर ॥ध०॥८॥

शब्दार्थ : मधुकर-भ्रमर, वर-ऊँचा, उत्तम, कर-हाथ, पद-पैर, चरण, कज-कमल, घन नामि-नित्य, अनेक नामवाले, अरदास-निवेदन, विनती।

भावार्थ : हे जिनेश्वर देव! मेरा मन रूपी भ्रमर हाथ जोड़कर कहता है कि आपके चरण कमलों में ही मेरा निवास रहे। हे अनेक नामवाले, नित्य, आनन्द के समूह रूप जिनेश्वर देव! इस सेवक की यह विनती है।

- सभी क्रिया अभ्यास से प्राप्त होती है। सभी कलाएँ अभ्यास से प्रकट होती हैं। प्राप्त होती हैं और अभ्यास से ध्यान, मौन आदि में विशेष प्रगति होती है। अभ्यास के द्वारा विश्व का कोई कार्य दुष्कर नहीं है, और अभ्यास के द्वारा आत्महित मोक्ष प्राप्ति भी दुष्कर नहीं है।

- ऋषभदेव भगवन्त की चिता में अग्नि कुमार देवताओं के मुख से अग्नि प्रज्वलित होते देखकर लोगों ने अग्नि मुखवाले देवता होते हैं ऐसा कहा। अर्थात् ऐसी प्रसिद्धि हुई। इसीसे अग्नि को देव मानना प्रचलित हुआ ऐसा आगमज्ञ कहते हैं।

''समाधान की ज्योत''

१६ श्री शांतिनाथ जिन स्तवन

आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानक से दशमें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक तक परम शांति की आवश्यकता का स्वरूप इस स्तवन में बताया गया है। इस स्तवन की रचना शांति के इच्छुक साधक व परमात्मा के मध्य संवाद के रूप में की गयी है।

मूल : 'शान्ति जिन! एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय! रे।
शान्ति स्वरूप किम जाणिये?
कहो 'मन किम परखाय?' रे ॥शा०॥१॥

शब्दार्थ : मुज-मेरी, त्रिभुवन राय-तीन भुवन के राजा, परखाय-परखा जा सके।

भावार्थ : हे शान्ति नाथ जिनेश्वर देव! त्रिभुवन के राजा! मेरी एक विनती सुनो। शान्ति का स्वरूप कैसे जानें? इसको मन से कैसे परखा जाय? सो कहें।

मूल : 'धन्य! तुं आतम जेहने, एहवो प्रश्न अवकाश रे।'
धीरज मन धरी सांभलो, कहुं शान्ति प्रतिभास रे ॥शा०॥२॥

शब्दार्थ : जेहने-जिसको, एहवो-ऐसा, अवकाश-समय, प्रतिभास-प्रकाश, स्वरूप।

भावार्थ : हे आत्मा, तू धन्य है जिसे ऐसा प्रश्न करने को समय मिला है। तुझे ऐसा प्रश्न उत्पन्न हुआ है। अतएव मन में धैर्य धारण करके सुन! शान्ति का स्वरूप कहता हूँ।

शान्ति धर्म जानने की इच्छा, वही इच्छा योग और वहीं मोक्ष का बीज है।

मूल : भाव अ विशुद्ध सुविशुद्ध जे कह्या जिनवर देव रे।
ते 'तिम अवितत्थ सद्दहे,
प्रथम ए शान्ति पद सेव रे ॥शा०॥३॥

शब्दार्थ : भाव-आत्मा के परिणाम, अविशुद्ध-अशुद्ध, सुविशुद्ध-शुद्ध, ते-उन्हें, तिम-उसी प्रकार से, अवितत्थ-खरी रीत से, सद्दहे-श्रद्धा करे, स्वीकार करे, शान्ति पद-शान्ति का पद, स्थान, सेव-सेवना, सेवा करना, स्वीकार करना।

भावार्थ : श्री जिनेश्वर देव ने आत्मा के अशुद्ध व शुद्ध जो भाव परिणाम कहे हैं, वे उसी प्रकार हैं ऐसा सही रीति से स्वीकार करना, यह शान्ति का प्रथम स्थान है, उसकी सेवा करो, उसे स्वीकार करो।

मूल : आगम-धर गुरु समकिती, किरिया संवर सार रे।

संप्रदायी अवञ्चक सदा, शुचि अनुभवाधार रे ॥शा०॥४॥

शब्दार्थ : आगमधर-शास्त्रों के ज्ञाता, समकिती-सम्यक्त्व गुण के धारक, संवर-आत्मा के साथ कर्मों के चिपकने की, बंधने की प्रवृत्ति को रोकना, क्रिया संवर सार-संवर के सार रूप क्रिया को करने वाले, संप्रदायी-परंपरागत गुरु संप्रदाय वाला, अवञ्चक-माया-कपटरहित, सरल, निर्मल, सदा शुचि-सदैव पवित्र, शुचि, अनुभवाधार-शुद्ध पवित्र अनुभवों से युक्त।

भावार्थ : आगम शास्त्रों के ज्ञाता, सम्यक्त्व गुण के धारक, संवर की साधना वाली उत्तम क्रिया के आराधक, गुरु परम्परा के संप्रदाय वाले, सरल, माया कपट रहित, सदैव पवित्र व पवित्र अनुभवों के धारण कर्त्ता ऐसे गुरु शान्ति के स्थान हैं।

उपर्युक्त योगा वंचक योग (नामक) शान्ति का स्थान है।

मूल : शुद्ध आलंबन आदरे, तजी अवर जंजाल रे।
तामसी वृत्ति सवि परिहरी, भजे सात्विक साल रे ॥शा०॥५॥

शब्दार्थ : तजी-त्यागकर, अवर-अन्य, तामसी वृत्ति-तामसिक प्रवृत्तियाँ, अमानवीय व्यवहार, सवि-सब, परिहरी-त्यागकर, भजे-धारण करे।

भावार्थ : शुद्ध गुरु महाराज का योग प्राप्त करके शुद्ध क्रिया का पालन करना, अन्य समस्त जंजाल का त्याग करना, सब प्रकार की तामसिक प्रवृत्तियों का त्याग करके सात्विक व्यवहार को धारणकर यह शान्ति प्राप्ति का शुद्ध धर्म (व्यवहार) है।

मूल : फल विसंवाद जेहमां नहिं, शब्द ते अर्थ संबन्धि रे।
सकल नयवाद व्यापी रह्यो, ते शिव साधन सन्धि रे ॥शा०॥६॥

शब्दार्थ : फल-विसंवाद-फल से असंबन्धित, जेहमां-जिसमें, अर्थ सम्बन्धी-अर्थ से सम्बन्धित, सकल नयवाद-अलग अलग श्रोता की योग्यता, समझ, शक्ति पालन सामर्थ्य, अलग अलग द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि संयोगों के आधार पर एक ही अनुष्ठान, कर्त्तव्य या अकर्त्तव्य कहा जा सकता है। अतः इसे ही नयवाद कहा गया है-वस्तु के निरूपण में अभिप्राय भेद रूप समस्त नय, शिव-मुक्ति, शिव साधन सन्धि-मुक्ति साधने की कड़ी।

भावार्थ : मोक्ष के प्राथमिक साधनों से प्रारम्भ करके मोक्ष प्राप्ति तक अनेक कारणों के सन्धि रूप पूरा मार्ग, पूरी सीढ़ी है। प्रथम सीढ़ी के बाद दूसरी सीढ़ी आती है। प्रथम सीढ़ी दूसरी सीढ़ी का कारण है। दूसरी सीढ़ी प्रथम सीढ़ी चढ़ने का फल है। ऐसे क्रमानुसार आत्मा श्रेणियों को प्राप्त करता हुआ मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

ऐसी क्रिया जो फल से असम्बन्धित नहीं है वे शब्द जो सच्चे अर्थों से सम्बन्धित है जिनमें भूल होने की संभावना नहीं है। मोक्ष रूप फल के कारण से परस्पर जुड़ी हुई कड़ियों में समस्त नयवाद व्याप्त है।

मूल : विधि प्रतिषेध कही आत्मा, पदारथ अ विरोध रे।
ग्रहण विधि महाजने परिग्रह्यो, इस्यो आगमें बोध रे ॥शा०॥७॥

शब्दार्थ : विधि-अन्वय, आत्मा में घटित होते गुण, स्वभाव, धर्म का निरूपण, प्रतिषेध-व्यतिरेक-विधि का विलोम, आत्मा में न घटते गुणों-धर्मों का निषेध, आत्मा पदारथ-आत्मा नामक पदार्थ, ग्रहण विधि-जानने की योग्य विधि से, महाजने-महान ज्ञानी पुरुषों ने, परिग्रह्यो-ग्रहण किया, स्वीकार किया, इस्यो-ऐसा, आगमे-आगमशास्त्र में, बोध-ज्ञान।

भावार्थ : विधि-सामने दीखता हुआ चमकीला ग्रह चन्द्र है क्योंकि उसकी किरणें ठण्डी हैं। तथा अभी रात्रि का समय है यह जानने की सकारात्मक विधि है।

यह चमकीला ग्रह चन्द्र है क्योंकि इसकी किरणे सूर्य जैसी गरम नहीं है। तथा अभी दिन का समय नहीं है यह जानने की नकारात्मक विधि प्रतिषेध है।

महान् पुरुषों ने, महान् ज्ञानी भगवन्तों ने विधि व प्रतिषेध की कसौटी पर जांच करके बिना किसी विरोध के आत्म पदार्थ को ग्रहण करने की विधि सहित स्वीकार किया। इस प्रकार का आगम संबंधी ज्ञान है।

यह शास्त्र योग शान्ति का स्थान है।

मूल : दुष्ट जन संगति परिहरी, भजे सुगुरु संतान रे।
जोग सामर्थ्य चित्त भाव जे, धरे मुगति निदान रे ॥शा०॥८॥

शब्दार्थ : सुगुरु-संतान-उत्तम गुरु की परंपरा में हुए सद्गुरु, जोग-योग, सामर्थ्य-सामर्थ्य नामक एक योग, चित्तभाव-आत्मा का उच्च स्वभाव रूप, मुगति निदान-मुक्ति का प्रबल कारण।

भावार्थ : प्रबल इच्छा से, दोष युक्त, दुष्टजनों की संगति का त्याग करके, उत्तम गुरु परम्परा में हुए सद्गुरु का आश्रय लेकर, ऊँचे चढ़ते हुए सामर्थ्य योग को आत्मा में धारण करना यही मोक्ष का प्रबल कारण है। सामर्थ्य योग की भूमिका प्राप्त होने से मुक्ति दूर नहीं रहती है।

सातवें गुणस्थानक को पार करके आठवें गुणस्थानक पर जब आत्मा चढ़ता है तब सातवें स्थान तक करने योग्य समस्त बाह्य धर्मानुष्ठान छोड़ने होते हैं। अतः यह अवस्था धर्म-सन्यास सामर्थ्य-योग कहलाती है।

तेरहवें गुणस्थानक का अंतर्मुहूर्त काल बाकी रहता है, तब मन, वचन, काया के योगों का निरोध करने की क्रिया प्रारम्भ होती है। वहाँ से शैलेशीकरण

के अन्तिम समय तक की अवस्था योग सन्यास सामर्थ्य योग कहलाती है।

तीन अवंचक योगों की दृष्टि से चौथी गाथा में गुरु का आश्रय लेना बताया है, आठवी गाथा में इच्छा योग शास्त्र योग की सिद्धि से गुरु आश्रय लेना बताया है। जिससे सामर्थ्य योग की प्राप्ति होती है।

सामर्थ्य योग के स्तर तक पहुँचे हुए महात्मा ही 'एकल विहार प्रतिमा' धारण कर सकते हैं, दूसरों को गुरु का योग अनिवार्य होता है।

मोक्ष प्राप्ति के उद्देश्य से शास्त्र ज्ञान प्रथम शास्त्र योग है। द्वितीय शास्त्र की सहायता से आत्मा की सर्व अवस्थाओं का विस्तृत ज्ञान-ज्ञान योग है।

ज्ञान योग के अनुसार आत्मा की अवस्थाओं को प्रकट करने का सबल प्रयत्न 'क्रिया योग' शान्ति का तीसरा स्थान है।

क्रिया योग के परिणाम से आत्मा के निर्मल होने से सामर्थ्य योग की प्राप्ति के समय आत्मा गुणातीत (सत्त्वः, रजसः, तमसः तीनों गुणों से रहित) होती है जिससे प्राप्त उत्तम समभाव चौथा 'समता योग' कहलाता है।

मूल : मान-अपमान चित्त समगणे, समगणे कनक पाषाण रे।
वन्दक निन्दक समगणे,
इस्यो होय तुं जाण रे ॥शा०॥९॥
सर्व जग जन्तुःने समगणे, समगणे तृण मणि भाव रे।
मुक्ति संसार बि-हुँ सम गणे,
मुणे 'भवजल निधिनाव' रे ॥शा०॥१०॥

शब्दार्थ : *चित्त-चित्त में, आत्मा में, सम-समान, गणे-मानना, कनक-सोना पाषाण-पत्थर, वन्दक-वन्दन करनेवाला, निन्दक-निन्दा करनेवाला, इस्यो-ऐसा, जाण-जानना, तृण-तिनका, मुणे-जानना, भव जल निधि नाव-भव सागर को तैरने में सहायक नाव समान।*

भावार्थ : परम ज्ञानी शान्ति जिनेश्वर देव आत्मा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि चित्त में मान अपमान को समान गिनना, स्वर्ण व पत्थर को समान समझना, वन्दक व निन्दक को समान मानना, इस स्थिति में होना तू जान ले तथा जगत् के समस्त प्राणियों पर समभावी बनना, तिनके व रत्न को समान समझना, मोक्ष व संसार को सरीखे मानना, यह समता योग ही भव सागर को तैरने में नाव समान है।

शास्त्र ज्ञान मुक्ति पथ की तरफ इंगित करता है, परन्तु सामर्थ्य योग ही आत्मा को समता सागर के किनारे पहुँचाता है।

मूल : आपणो आतम भाव जे, एक चेतना धार रे।

अवर सवि साथ संयोगथी
एह निज परिकर सार रे ॥शा०॥११॥

शब्दार्थ : आपणो-अपना, आत्म भाव-आत्म तत्त्व, चेतना-धार-चेतना को धारण करनेवाला, चेतना का आधार, अवर-अन्य, सवि-सब, साथ-साथ रहनेवाले, संयोगथी-आत्मा व कर्मों के संयोग से, निज-स्वयं का, परिकर-आसपास स्थित परिवार।

भावार्थ : चेतना गुण को धारण करनेवाला अपना आत्मतत्त्व ही परम शान्ति रूप है अन्य समस्त सांसारिक साथ कर्मों के संयोग से उत्पन्न साथी है। ऊपर इस स्तवन में सम्यक्त्व आदि सारभूत उत्तम गुणों का वर्णन हुआ है। यही आत्मा के आसपास रहा सच्चा परिवार है।

मूल : प्रभु मुखथी एम सांभली, कहे आतम राम रे।
ताहरे दरिसणे निस्तर्यो, मुज सिध्यां सवि काम रे ॥शा०॥१२॥

शब्दार्थ : आतम राम-आत्मा में रमण करनेवाला; आत्मार्थी-साधक जीव, ताहरे-तेरे, दरिसणे-दर्शन, दर्शनशास्त्र, निस्तर्यो-पार होना, सफल हुआ।

भावार्थ : उपर्युक्त वर्णन के अनुसार प्रभु मुख से शान्ति का स्वरूप सुनकर आत्मार्थी साधक कहता है कि हे प्रभु! तुम्हारे दर्शन से, तुम्हारे सिद्धान्त रूपी दर्शनशास्त्र से मैं पार हुआ हूँ। सफल हुआ हूँ। तथा मेरी आत्मा के समस्त कार्य सिद्ध हुए, सफल हुए हैं। मेरा शान्ति स्वरूप जानने का मनोरथ पूर्ण हुआ है।

मूल : अहो-अहो हुं मुज ने कहुं, 'नमो मुज, नमो मुज' रे।
अमीत फल दान दातारनी, जेहने भेंट थई तुज रे ॥शा०॥१३॥

शब्दार्थ : अमीत-असीमित, अगणित, दातार-देनेवाला, जेहने-जिसको, भेंट थई-मिलना हुआ।

भावार्थ : हे असीमित फलों के दान-दाता जिनेश्वर प्रभु आपसे जिसकी भेंट हुई है जिसने आपके शान्ति स्वरूप को जाना समझा है वह स्वयं धन्य है वह स्वयं को धन्य-धन्य कहता है। तथा बार-बार स्वयं के आत्मा के शान्ति स्वरूप को परमात्म रूप को नमन करता है। [यह निश्चय नय का कथन है।]

मूल : शान्ति स्वरूप संक्षेप थी, कह्यो निज पर रूप रे।
आगम मांहे विस्तार घणो,
कह्यो शान्ति जिन भूप रे ॥शा०॥१४॥

शब्दार्थ : निज पर रूप-स्वयं और पर की अपेक्षा से रूप।

भावार्थ : स्तवनकार श्री आनन्दघनजी महाराज कहते हैं कि स्व व पर की अपेक्षा से शान्ति का स्वरूप संक्षेप में इस प्रकार है। आगम शास्त्रों में श्री शान्ति (स्वरूप)

जिनेश्वर देव ने इसे अधिक विस्तार से कहा है।

मूल : शान्ति स्वरूप एम भावशे, धरी शुद्ध प्रणिधान रे।
आनन्द-घन पद पामशे, ते लहेशे बहुमान रे ॥शा०॥१५॥

शब्दार्थ : एम-इस प्रकार से, भावशे-भावना रखना, पालना, शुद्ध प्रणिधान-शुद्ध आलंबन में मन वचन काया की एकाग्रता, लहेशे-लेता है, प्राप्त करेगा, बहुमान-अत्यधिक सम्मान, यश।

भावार्थ : जो आत्मा मन, वचन, काया की एकाग्रता पूर्वक शुद्ध प्रणिधान को धारण करके उपर्युक्त शान्ति स्वरूप की भावना रखता है, पालन करता है। वह परम आनन्द समूह रूप मोक्ष पद को प्राप्त करेगा, तथा जगत् में अत्यधिक सम्मान व यश का पात्र होगा।

- हे गौतम! जो आत्मा मैथुन सेवन करनेवाले आत्मा को वन्दन करता है। वह आत्मा अठारह हजार सिलांग रथ के धारक महापुरुषों की महाआशातना करता है। तीर्थंकरों की आदि शब्द से गणधरादि की आशातना करता है। जिसके फल स्वरूप अनन्त संसारीपना उस आत्मा को प्राप्त होता है।

- घृत युक्त दीपक की लौ उस स्थान पर रहे हुए पदार्थों का दर्शन करवाती है और उस स्थान को सुगंध युक्त एवं शीतलता के अंश से युक्त भी रखती है। आँखों के लिए घृत के दीपक हितकारी माने हैं। उसी प्रकार मूल गुण युक्त मुनि भगवंतों के वचन भौतिक पदार्थों की वास्तविकता को बतलाकर आत्मा को संवेग वैराग्यादि गुणों से सुगंधित एवं संतोषीत बनाते हैं और ऐसे मुनि भगवंतों के वचन अत्यंत मधुर एवं शीतलता दायक होते हैं।

- शुद्धात्म तत्त्व रूपी पदार्थ का ज्ञान जिनको प्राप्त नहीं हुआ है, अर्थात् सम्यग्दर्शन से रहित है और इन्द्रियों के विषय विकार की मात्रा एवं क्रोधादि कषाय जिनमें अधिक हैं ऐसे **अज्ञ आत्माओं की अतीव प्रीति पूर्वक सेवा करना, उनके आस-पास घूमना एवं उन्हें आहारादिक का दान देना। यह सब कुदेव एवं कुमनुष्य की प्राप्ति रूप फल को प्राप्त करवाता है।**

"समाधान की ज्योत"

१७ श्री कुन्थूनाथ जिन स्तवन

शान्ति का स्वरूप जानने, शान्ति मार्ग ग्रहण करने, सामर्थ्य योग के बल से समता प्राप्त करने के उपरान्त भी मन की निर्बलता से आत्मा पुनः पतन की ओर अग्रसर हो सकती है। इस स्तवन में स्तवनकार ने इसी भय स्थान की ओर ध्यान आकृष्ट किया है।

मूल : मनडुँ किम हि न बाजे? हो कुन्थू जिन! मनडु किम हि न बाजे?
जिम जिम जतन करीने राखुं,
तिम तिम अलगुं भांजे ॥हो कुन्थू॥१॥

शब्दार्थ : किम हि-कैसे भी, किसी भी प्रयत्न से, बाजे-बाध्य होना, बाज आना, मानना, जिम-जिम-जैसे-जैसे, जतन-यत्न, तिम-तिम-वैसे-वैसे, अलगूं-दूर, भांजे-भागता है।

भावार्थ : हे कुन्थूनाथ जिनेश्वर देव! मेरा मन मानता ही नहीं है। मन पर मेरा वश नहीं है। जैसे-जैसे मैं इसे वश में करने का प्रयत्न करता हूँ वैसे-वैसे यह दूर भागता है अर्थात् मेरे वश में नहीं रहता।

मूल : रजनी वासर वसति उजड गयण पायाले जाय।
'सांप खाये ने मुखडुं थोथुं' एह उखाणो न्याय ॥हो कुन्थू॥२॥

शब्दार्थ : रजनी-रात, वासर-दिवस, वसति-बस्ती, उजड-उजाड़, निर्जन प्रदेश, गयण-गगन, पायाले-पाताल, थोथु-सत्य रहित, अर्थ रहित, स्वाद रहित, उखाणो-उक्ति, कहावत, न्याय-तर्क संगत, अनुसार।

भावार्थ : यह मन रात दिन बस्ती में, निर्जन प्रदेश में, आकाश में और पाताल में फिरता रहता है। अति चंचल है। जिस प्रकार सांप किसी को काटता है तो भी उसका मुंह स्वाद रहित रहता है। इसी उक्ति के अनुसार इस अत्यधिक चंचल मन को भी किसी भी प्रकार की प्राप्ति नहीं होती है।

मूल : मुगति तणा अभिलाषी तपिया, ज्ञान ने ध्यान अभ्यासे।
वयरीडु कांई एहवुं चिन्ते, नांखे अवले पासे ॥हो कुन्थू॥३॥

शब्दार्थ : मुगति तणा-मुक्ति के, तपिया-तपस्वी, वयरीडुं-बैरी, बड़ा शत्रु, नांखे-फैंकना, अवले पासे-विपरीत दिशा में।

भावार्थ : मोक्ष के चाहक, ज्ञान ध्यान में लीन, तपस्वियों का मन भी महा शत्रु की भांति, ऐसा चिन्तन करवाता है कि मुक्ति के अभिलाषी विपरीत दिशा में, भव-भ्रमणाओं में फंसकर रह जाते हैं।

ग्यारहवें गुण स्थानक जैसे उच्च स्थान पर से महान आत्मा भी मन के वशीभूत होकर, पतित होकर संसार में भटक जाती है।

मूल : आगम आगम धरने हाथे, नावे किण विध आंकुं।
किहां कणे जो हठ करी हटक्युं,
तो व्याल तणी पेरे वांकुं ।।हो कुन्थू।।४।।

शब्दार्थ : आगम-शास्त्र ज्ञान, आगम धर-शास्त्रों के ज्ञाता, नावे-न आवे, आंकुं-अंकुश में, किहां कणे-कहीं पर, हटक्युं-अटकना, व्याल-सर्प, वांकुं-वक्र, आडा-तिरछा।

भावार्थ : शास्त्रों के जाननेवाले, शास्त्रों की सहायता से भी मन को अंकुश में नहीं रख पाते हैं। इस चंचल मन को कहीं भी जो हठ करके अटकाता हूँ तो सर्प की भाँति आडा तिरछा होकर भी वश में से भाग जाता है।

मूल : जो ठग कहुं तो ठगतो न देखुं, शाहुकार पण नांहि।
'सर्व माहे, ने सहुथी अलगुं,
ए अचरिज मन मांहि' ।।हो कुन्थू।।५।।

शब्दार्थ : ठग-धूर्त, शाहुकार-सज्जन, विश्वासी।

भावार्थ : यदि मैं इस मन को ठग कहुं तो भी उचित नहीं है, क्योंकि यह इच्छा के विरुद्ध कहीं नहीं जाता है। इच्छा को ठगता नहीं है। किन्तु इसे शाहुकार भी कैसे मान लूँ? क्योंकि इस पर विश्वास भी नहीं किया जा सकता है।

यह सर्व इन्द्रियों में व्याप्त होते हुए भी सब से अलग है। इस रूप में यह एक आश्चर्य है। यह आत्मा को दुश्मन की भाँति पतन के मार्ग पर भी ले जा सकता है। तथा विपरीत भयंकर परिस्थिति में मित्र की भाँति बचा भी सकता है। अतः इसे कैसा मानना चाहिए? यह सचमुच एक आश्चर्य है।

मूल : जे जे कहुं ते कान न धारे, आप मते रहे कालो।
सुर नर पण्डित जन समझावे,
समजे न माहरो सालो ।।हो कुन्थू।।६।।

शब्दार्थ : आप मते-स्वयं की समझ से, स्वच्छंदता से, कालो-भोला, नासमझ, माहरो-मेरा, सालो-अमुक क्षेत्र में निम्न व्यक्ति के लिए साला सम्बोधन का प्रयोग किया जाता है, मन को मति रूपी (कुमति सुमति) पत्नी का भाई होने से भी साला कहा जा सकता है।

भावार्थ : मैं जो कुछ भी कहता हूँ उसे यह मन सुनता ही नहीं है। स्वच्छंदता से भोला और नासमझ की भाँति रहता है। देवताओं, मानवों, पण्डितों के समझाने से भी यह मेरा साला समझता ही नहीं है।

मूल : में जाण्युं 'ए लिंग नपुंसक' सकल मरद ने ठेले।
बीजी वाते समरथ छे नर, एहने कोई न झेले ।।हो कुन्थू।।७।।

शब्दार्थ : सकल-समस्त, मरद-पुरुष, ठेले-ठेलना. बीजी-अन्य, वाते-बाबतों में, झेले-झेलना, जीतना।

भावार्थ : व्याकरण के अनुसार यह नपुंसक लिंगी मन समस्त पुरुषों को भी हरा देता है। यह मैंने जाना। मानव अन्य समस्त बातों में सामर्थ्यवान् है किन्तु इस मन को कोई भी नहीं जीत सकता।

मूल : मन साध्युं, तेणे सघलुं साध्युं, एह वात नहिं खोटी।
एम कहे 'साध्युं' ते नवि मानुं,
एक हि वात छे मोटी ।।हो कुन्थू।।८।।

शब्दार्थ : साध्युं-साधना, वश करना, सघलुं-सब कुछ, वात-कहावत, खोटी-झूठी, मोटी-बड़ी।

भावार्थ : जिसने मन को जीत लिया उसने सब कुछ जीत लिया। यह कहावत झूठी नहीं है, शत प्रतिशत सत्य है।

किन्तु यदि कोई यह कहता है कि मैंने मेरे मन को जीत लिया है तो मैं नहीं मान सकता क्योंकि यह एक बहुत बड़ी बात है। सामान्य बात नहीं है। सामान्य व्यक्ति के सामर्थ्य से परे है।

मूल : मनडुं दुराराध्य ते वश आण्युं, ते आगमथी मति आणुं।
आनन्द-घन प्रभु माहरुं आणो,
तो साचुं करी जाणुं ।।हो कुन्थू।।९।।

शब्दार्थ : दुराराध्य-कठिनाई से वश होवे वैसा, वश-आण्यु-वश में किया, आणुं-लावुं, आणो-लावो, जाणुं-जानना, मानना।

भावार्थ : हे कुन्थूनाथ प्रभु! आपने इस दुर्जेय मन को वश में किया है ऐसा मैं आगमों से जानता हूँ।

परन्तु हे आनन्द समूह सम प्रभु! यदि मेरे मन को वश करने में आप सहायक होओ तो आपने मन को वश किया, ऐसा मैं मानूँ।

- आज जो वैराग्य भाव से युक्त तप अर्थात् मुनि जीवन ग्रहण किया है वह यदि कल स्त्रियों के नयन बाण रूपी लुटेरों के द्वारा वैराग्य रूपी संपत्ति से रहित कर दिया जाता है तो भव परंपरा को बढ़ानेवाले ऐसे मुनिजीवन से तो गृहस्थ जीवन श्रेष्ठ था। "समाधान की ज्योत"

१८ श्री अरनाथ जिन स्तवन

आत्मा के विकास क्रम में अनुभव ज्ञान का बीजारोपण चौथे गुणस्थानक में होता है व प्रकटीकरण सातवें गुणस्थानक से होता है। यह अनुभव ज्ञान बारहवें गुणस्थानक तक रहता है। तत्पश्चात् केवल ज्ञान होता है। यह अनुभव ज्ञान अप्रमत्त अवस्था में होता है। तब आत्मा स्व स्वभाव में लीन होती है तथा आत्मा की तमाम परिणतियाँ गौण हो जाती हैं। केवल आत्मा प्रकाशित रहती है। यह **स्व-समय-स्थिति** कहलाती है। जिसमें उत्कृष्ट धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान के आधार पर ध्यान भी होता है। इस स्थिति में, जिसे सामान्य अवस्था में साधने हेतु करोड़ों वर्षों की तपश्चर्या भी समर्थ नहीं है। उस स्थिति को आत्मा थोड़े से समय में ही साध सकती है।

रात्रि के पश्चात् सूर्योदय से पहले जैसे पूर्व में लालिमा-अरुणोदय आभास होता है। वैसा ही अनुभव ज्ञान केवल ज्ञान से पूर्व आत्मा को होता है।

उपर्युक्त अनुभव ज्ञान की स्थिति में आत्मा के स्वरूप का इस स्तवन में वर्णन है।

मूल : धरम परम अरनाथनो, केम जाणुं भगवन्त? रे।
स्व-पर समय समजाविये, महिमावंत महन्त रे ॥धरम०॥१॥

शब्दार्थ : धरम-धर्म दर्शन सिद्धान्त, परम-उत्कृष्ट, अरनाथ-अरनाथ नामक अठारहवें तीर्थंकर, जिनेश्वर देव, केम-कैसे, जाणुं-जानना, समझना, अनुभव करना, भगवन्त-भगवान, स्व-पर समय-केवल ज्ञान पाने से पहले निर्विकल्प ध्यानस्थ आत्मा की स्थिर अवस्था, स्वसमय-शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि से विचारणा, पर समय-पर द्रव्य की या पर्यायार्थिक नय की दृष्टि से विचारणा, स्व समय के अलावा अन्य अवस्था, महिमावंतमहन्त-महिमावान महापुरुष।

भावार्थ : हे महिमावान् महापुरुष श्री अरनाथ भगवान मैं आपके उत्कृष्ट धर्म को कैसे जान सकता हूँ? इसे स्व समय (सिद्धांत) व पर समय (सिद्धांत) की अपेक्षा से समझावें।

मूल : शुद्धातम अनुभव सदा, स्व समय एह विलास रे।
पर पडिछांयड़ी जे पड़े, ते पर समय निवास रे ॥धरम०॥२॥

शब्दार्थ : शुद्धातम अनुभव-शुद्ध आत्मा का अनुभव, सदा-सदैव, निरंतर, एह-यह, विलास-विस्तार, प्रभाव, पर-अन्य, पडिछांयड़ी-प्रतिछाया।

भावार्थ : शुद्ध आत्मा का सदैव हेतु अनुभव स्व समय का प्रभाव जानना। तथा अन्य आत्मा, द्रव्यों या गुणों की प्रतिछाया से आत्मा प्रभावित रहती है वह पर

समय का स्थान है।

मूल : तारा नक्षत्र ग्रह चन्द्रनी ज्योति दिनेश मोझार रे।
दर्शन ज्ञान चरण थकी, शक्ति निजात्म धार रे ॥धरम०॥३॥

शब्दार्थ : दिनेश-सूर्य, मोझार-में, शक्ति-शक्ति स्वरूप में, निजात्म-स्वयं की आत्मा में, धार-धारणकर, स्वीकार करना।

भावार्थ : जिस प्रकार तारा, नक्षत्र, ग्रह व चन्द्रमा का प्रकाश सूर्य में समावेश हो जाता है। उसी प्रकार दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूपी शक्ति स्वयं की आत्मा में धारण करो।

मूल : भारी पीलो चीकणो, कनक अनेक तरंग रे।
पर्याय दृष्टि न दीजिए, एकज कनक अभंग रे ॥धरम०॥४॥

शब्दार्थ : भारी-वजनी, सोना अन्य पदार्थों की तुलना में घनत्व कम होने से वजनी होता है, पीलो-पीले रंग का, चीकणो-चिकना, सब धातुओं में सबसे छोटे अणुओं वाला होने से सोना सबसे चिकना होता है, कनक-सोना, तरंग-स्वरूप, पर्याय दृष्टि-पर्यायार्थिक नय की दृष्टि, अभंग-अभेद रूप में।

भावार्थ : द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि से सोना भारी, पीला, चिकना अनेक स्वरूप वाला है। पर्यायार्थिक नय की दृष्टि से सोने का आभूषण खरीददार आभूषण को उसकी डिजाइन उसके स्वरूप से मुख्य रूप से जानता है। किन्तु मूल रूप में आभूषण भी सोना ही है।

इसी प्रकार जगत् में दोनों नय की दृष्टि से व्यवहार चलता है एक नय में गौण रूप में दूसरा नय भी होता है जिससे नय की सापेक्षता होती है।

सोना भारी, पीला, चिकना आदि अनेक स्वरूप वाला है, किन्तु पर्याय दृष्टि (व्यवहारिक दृष्टि) से न देखकर सोने को एक मात्र अभेद रूप में सोना ही जानना चाहिए।

मूल : दर्शन ज्ञान चरण थकी, अलख स्वरूप अनेक रे।
निर्विकल्प रस पीजिए शुद्ध निरञ्जन एक रे ॥धरम०॥५॥

शब्दार्थ : अलख-अलक्षित, आत्म द्रव्य, निर्विकल्प रूप-विकल्प रहित, पर्याय रहित, निर्विकल्प नामक शुक्ल ध्यान का दूसरा पद, निर्विकल्प ध्यान में निश्चय नय से मुख्य रूप में आत्म द्रव्य का ध्यान होता है, निर्विकल्प रस पीजिए-निर्विकल्प ध्यान में अवस्थित होना, निर्विकल्प ध्यान का आनन्द रस पान करना, शुद्ध-पर्याय रहित, निरंजन-अंजन-(कालिमा) रहित।

भावार्थ : दर्शन, ज्ञान, चारित्रादिक पर्यायों की दृष्टि से आत्म द्रव्य के अनेक स्वरूप दीखते हैं पर विकल्प रहित अवस्था में, निर्विकल्प ध्यान की निमग्न

अवस्था में तो आत्मा एक शुद्ध व कालिमा रहित निरंजन रूप में ही प्रकाशमान है।

मूल : परमारथ पन्थ जे कहे, ते रंजे एक तन्त रे।
व्यवहारे लख जे रहे, तेहना भेद अनन्त रे ॥धरम०॥६॥

शब्दार्थ : परम-मुख्य, अरथ-अर्थ, लक्ष्य, पन्थ-मार्ग, परमारथ पन्थ-परमार्थ मार्ग रूपी निश्चय नय, रन्जे-राजी होना, प्रसन्न होना, व्यवहारे-व्यवहार नय की अपेक्षा से, पर्याय दृष्टि से, लख-लक्ष्य रूप आत्मा, देखना।

भावार्थ : जो परमार्थ मार्ग का कथन करनेवाले हैं वे आत्मा की अभेदता, एकता में ही प्रसन्नता अनुभव करते हैं पर जो व्यवहार नय से देखते हैं उन्हें आत्मा अनन्त रूप में भासित होती है।

आत्म विकास क्रम में व्यवहार दृष्टि पर रहे हुए जीव आत्मा को अनन्त रूपों में देखते हैं, पर उससे आगे बढ़े हुए जीवों के लिए व्यवहार दृष्टि गौण होती है तथा निश्चय दृष्टि (परमारथ रूप) से उन्हें आत्मा एक स्वरूप में ही दृष्टि गोचर होती है।

इस प्रकार निश्चय नय व व्यवहार नय की उपयोगिता अलग-अलग जाननी चाहिए।

मूल : व्यवहारे लख दोहिलो, कांई नाऽऽवे हाथ रे।
शुद्ध नय थापना सेवतां, नवि रहे दुविधा साथ रे ॥धरम०॥७॥

शब्दार्थ : व्यवहारे-व्यवहार नय से, लख-लक्ष्य, दोहिलो-दुर्लभ, नावे-ना आवे, शुद्धनय-निश्चयनय, सेवतां-सेवन करने से, उस प्रकार आचरण करने से, नवि-नहीं।

भावार्थ : मात्र व्यवहार नय से साधना करने पर आत्म लक्ष्य दुर्लभ है, हाथ में कुछ भी खरी वस्तु नहीं आती है, अर्थात् कुछ भी प्राप्ति नहीं होती है, परंतु शुद्ध निश्चयनय लक्ष्य में रखकर साधक व्यवहार नय से आचरणा करता है तो उसकी समस्त दुविधाएँ साथ छोड़ देती हैं।

मूल : एक पखी लख प्रीतनी, तुम साथे जग नाथ रे।
कृपा करीने राखजो, चरण तले ग्रही हाथ रे ॥धरम०॥८॥

शब्दार्थ : पखी-पक्षीय, लख-लक्ष्य, जगन्नाथ-जगत् के स्वामी, चरण तले-चरणों में, ग्रही हाथ रे-हाथ पकड़कर।

भावार्थ : हे जगत् के स्वामी जिनेश्वर देव! आपके साथ मेरी प्रीति का लक्ष्य एक पक्षीय है। मात्र व्यवहार नय तक ही है। फिर भी आप कृपा करके, मेरा हाथ ग्रहण करके मुझे चरणों में स्थान देना।

व्यवहार नय की अपेक्षा से तीर्थंकर प्रभु जगत् के स्वामी हैं। तथा साधक

आत्मा भिक्षुक है, अतः असमानता होने से प्रीति नहीं होती है। अतः प्रभु से कृपा की याचना की गयी है। निश्चय नय से जगत् के सम्पूर्ण जीव जगत् में स्थित आत्म द्रव्य एक स्वरूप ही है।

हे प्रभु! मैंने अभी तक सिद्ध दशा प्राप्त नहीं की है। साधक दशा में हूँ। यहाँ से भी मेरा पतन न हो अतः मेरा हाथ पकड़कर आपके चरणों में स्थान देना, जिससे भविष्य में परमार्थ प्राप्त कर सकूं।

मूल : चक्री धरम तीरथ तणो, तीरथ फल तत्त सार रे।
तीरथ सेवे ते लहे, आनन्द-घन निरधार रे ॥धरम०॥९॥

शब्दार्थ : चक्री-चक्रवर्ती, तत्त सार-तत्त्व सार, आनन्द-घन-आत्मा की एकता का अनुभव रूप आनन्द, निरधार-निश्चित् रूप से, लहे-प्राप्त करे।

भावार्थ : हे श्री अरनाथ प्रभु! आप राज राजेश्वर चक्रवर्ती होने के उपरांत अपने स्व समय रूप परम धर्म की प्राप्ति कराने हेतु धर्म की स्थापना करके धर्म तीर्थ के भी चक्रवर्ती बने।

आपके तीर्थ के अस्तित्व का जगत् में फल रूप, उत्तम तत्त्व, देय, उपादेय, उपेक्ष्य का क्रमशः त्याग स्वीकार व महा उपेक्षा रूप तत्त्व सार उत्पन्न होता है।

अतः जो धर्म तीर्थ की सेवा करता है वह निश्चित रूप से आत्मा की एकता के अनुभव रूपी आनन्द को प्राप्त करता है।

- सामान्य आत्माओं की प्रतिज्ञा, नियम, जल, रेत व भूमि/पृथ्वी में बनायी गयी रेखा के सदृश है जो हवा के एक झोंके से विलिन हो जाय अर्थात् उनकी प्रतिज्ञा अतिशीघ्रता से टूट जाती है। पर महात्मा पुरुषों की प्रतिज्ञा पत्थर की रेखा के सदृश है। पत्थर की रेखा कभी मिटती नहीं, वैसे महापुरुषों ने ग्रहण की हुई प्रतिज्ञा कभी भंग नहीं होती। वे उस प्रतिज्ञा का पालन आजीवन करते हैं। प्राणों की आहूती दे देंगे, पर प्रतिज्ञा का पालन परिपूर्ण रूप से करेंगे।

- गर्व का नाश करनेवाला ज्ञान अनन्तज्ञानियों ने दर्शाया है। अगर कोई ज्ञान प्राप्त कर गर्व करता है तो उसका वैद्य कौन? अर्थात् उसकी चिकित्सा नहीं होती। जैसे अमृत अगर जहर का काम करे तो उसकी चिकित्सा कैसे की जाय?

"समाधान की ज्योत"

१९ श्री मल्लीनाथ जिन स्तवन

इस स्तवन में क्षपकश्रेणि पूर्णकर चार घाति कर्मों के क्षय से, अठारह दोष दूर होने से उत्पन्न होनेवाले सर्वज्ञपने का विवरण बताया गया है।

मूल : सेवक किम अवगणिये! हो! मल्लि जिन! ए अब शोभा सारी।
अवर जेहने आदर अति दीये, तेहने मूल निवारी हो ॥म०॥१॥

शब्दार्थ : अवगणिये-उपेक्षा करना, सारी-अच्छी, समस्त, अवर-अन्य देव, मूल-जड़मूल से, निवारी-निवारण करना, नाश करना।

भावार्थ : हे मल्लिनाथ जिनेश्वर! अन्य जिन को अधिक सम्मान करते हैं वैसे अन्य देवों की आप कैसे उपेक्षा करते हैं? क्या ऐसा करने में ही आपकी शोभा है?

(अन्य अर्थात् हरि हरादिक देव या सांसारिक सन्मान पात्र जीव जो कि राग-द्वेष के वशीभूत हैं। उनकी उच्च श्रेणी प्राप्त आत्मा उपेक्षा ही करता है।)

दूसरा अर्थ - हे मल्लिनाथ जिनेश्वर! आप राग-द्वेष-मोह आदि सेवकों की कैसे उपेक्षा करते हैं जो अनादिकाल से आप के साथ थे। अन्य सांसारिक जीव इनको अत्यधिक आदर देते हैं। आपने उनका ही जड़मूल से नाश कर दिया है।

कर्मचारी पुराना होने पर भी जब अपराधी साबित होता है तो उसे निकालने में ही शोभा है।

मूल : ज्ञान स्वरूप अनादि तमारूं ते लीधुं तमे ताणी।
जुओ अज्ञान दशा रीसावी जातां काण न आणी हो ॥म०॥२॥

शब्दार्थ : ज्ञान स्वरूप-ज्ञानमय रूप, अनादि-आदि रहित, तमारूं-तुम्हारा, लीधुं-लिया, ताणी-खींचकर, जुओ-देखो, रीसावी-नाराज होना, कुपित होना, काण-शोक।

भावार्थ : हे जिनेश्वर देव! आपने आपके अनादिकाल के ज्ञान स्वरूप को प्राप्त कर लिया है। जिससे आपकी पूर्व साथिन अज्ञान दशा नाराज होकर जाने लगी है। किन्तु आपको लेशमात्र भी शोक नहीं है।

मूल : निद्रा सुपन जागर उजागरता, तुरिय अवस्था आवी।
निद्रा सुपन दशा रीसाणी, जाणी न नाथ मनावी हो ॥म०॥३॥

शब्दार्थ : निद्रा-नींद, सुपन-स्वप्नावस्था, जागर-सहज जाग्रतावस्था, उजागरता-सम्पूर्ण जाग्रत अवस्था, तुरिय-चौथी, मनावी-मनाना।

भावार्थ : निद्रावस्था, स्वप्नावस्था, सहज जाग्रतावस्था, सम्पूर्ण जाग्रतावस्था में से चौथी अवस्था आई। जिसे देखकर क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय अवस्थाएँ

नाराज होकर साथ छोड़कर जाने लगी, फिर भी आप उन्हें नहीं मना रहे हो।

प्रथम तीन गुणस्थानक तक निद्रावस्था, चौथे से छट्ठे गुणस्थानक तक स्वप्नावस्था, सातवें से बारहवें तक सहज जाग्रत अवस्था तथा तत्पश्चात् संपूर्ण जाग्रतावस्था होती है तथा क्रमशः दूसरी अवस्था के आगमन पर पहली अवस्था विदा लेती है।

मूल : समकित साथे सगाई कीधी, सपरिवार शुं गाढ़ी।
मिथ्या मति अपराधण जाणी, घरथी बाहिर काढ़ी हो ॥म०॥४॥

शब्दार्थ : समकित-सम्यक्त्व, सगाई-संबंध स्थापित करना, गाढ़ी-मजबूत, मिथ्यामति-उलटी बुद्धि।

भावार्थ : हे प्रभु आपने मिथ्यामति को अपने प्रति अपराधी जानकर घर से बाहर कर दिया है तथा समकित परिवार के साथ चिर संबंध स्थापित कर लिया है। अर्थात् क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया है, जो कि शोभा रूप है।

मूल : हास्य रति अरति शोक दुगंच्छा, भय पामर करसाली।
नो कषाय श्रेणि गज चढतां, श्वानतणी गति झाली हो ॥म०॥५॥

शब्दार्थ : पामर-बेचारा, गरीब, करसाली-कृष, दुबला, नो कषाय-नाना कषाय, श्रेणिगज-क्षपक श्रेणि रूप हाथी, श्वानतणी-कुत्ते की तरह से, गति-गमन, झाली-पकड़ी, ग्रहण करना।

भावार्थ : हे प्रभु! आपने जब क्षपक श्रेणि रूप हाथी पर सवारी की तब हास्य, रति, अरति, शोक, दुगंच्छा, भय इत्यादि कषायों ने बेचारे कृष कुत्ते की गति को ग्रहण किया अर्थात् दुम दबाकर भाग गये। यह आपके लिए उत्तम शोभा है।

मूल : राग द्वेष अविरति नी परिणति, ए चरण मोहना योधा।
वीतराग परिणति परिणमतां उठी नाठा बोधा हो ॥म०॥६॥

शब्दार्थ : राग-माया व लोभ, द्वेष-क्रोध व मान, अविरति-पांचों इन्द्रियों के विषय में आसक्ति, हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य व मुग्धपना तरफ आसक्ति, भावपूर्वक दूर न रहने की प्रवृत्ति, योधा-योद्धा, सिपाही, वीतराग परिणति-रागद्वेष रहित परिणाम, सर्व विरति परिणाम, नाठा-भागना, बोधा-बुद्धि पाकर, समझकर, जानकर।

भावार्थ : आत्मा वीतराग परिणाम को प्राप्त होने पर चारित्र मोहनीय कर्म के राग, द्वेष, अविरति नामक सैनिक (स्वयं का अहित जानकर) भाग गये हैं।

स्वदेश के सिपाहियों के जागने पर विदेशी आक्रांताओं की भांति आत्मा के दुश्मनों का भागना शोभा जनक है।

मूल : वेदोदय कामा परिणामा, काम्य करम सहु त्यागी।

निष्कामी करुणा रस सागर,
अनन्त चतुष्क पद पागी हो ॥म०॥७॥

शब्दार्थ : वेदोदय-विपरित लिंगी के साथ क्रीड़ा करने का आकर्षण, कामा-कामना, इच्छा, काम्य क़रम-काम से उत्पन्न होती प्रवृत्ति, कर्म, सहु त्यागी-सबका त्याग करना, निष्कामी-कामना रहित, करुणा रस सागर-अनन्त दया के भण्डार, अनन्त चतुष्क पद-अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनंत वीर्य नामक चार पद, पागी-पैरों में पड़ना या प्रगट होना।

भावार्थ : विपरीत लिंगी के साथ क्रीड़ा करने की इच्छा के परिणाम स्वरूप होती समस्त प्रवृत्तियों का आपने त्याग किया है, निष्कामी, अनन्त दया के सागर जिनेश्वर देव इससे आपने चार अनन्त पदों (अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य) को प्राप्त किया है।

मूल : दान विघन वारी सहुजनने, अभयदान पद दाता।
लाभ विघन जग विघन निवारक, परम लाभ रसमाता हो ॥म०॥८॥

शब्दार्थ : दान विघन-दानान्तराय कर्म, वारी-दूर करके, लाभ विघन-लाभान्तराय कर्म, जग विघन निवारक-जगत् के समस्त विघ्नों के नाश रूप, परम-सर्वोच्च, रसमाता-आनन्द में मस्त।

भावार्थ : जगत् के समस्त विघ्नों का नाश करनेवाले हे प्रभो आपने दानान्तराय कर्म का नाश करके जगत् के समस्त जीवों हेतु अभयदान पद, निर्भय स्थान, मोक्ष के दाता बनें। आप लाभान्तराय कर्म का नाश करके सर्वोच्च लाभ-मोक्ष प्राप्त करके अनन्त आनन्द के साथ विराजमान हो।

मूल : वीर्य विघन पण्डित वीर्ये हणी, पूरण पदवी योगी।
भोगोपभोग दोय विघन निवारी, पूरण भोग सुभोगी हो ॥म०॥९॥

शब्दार्थ : वीर्य विघन-वीर्यान्तराय कर्म, पण्डित-विद्वान, हणी-नाश करके, पूरण पदवी-सम्पूर्ण पदवी, अरिहन्त पद, योगी-योग्य बने, भोगोपभोग दोय विघन-भोगान्तराय व उपभोगान्तराय नामक दो कर्म, निवारी-निवारण करके, पूरण-सम्पूर्ण, भोग-सिद्धान्त संबंधी आठ गुण, भोगी-भोक्ता।

भावार्थ : हे विद्वान! आप वीर्यबल से वीर्यान्तराय कर्म का नाश करके पूर्ण पद के योग्य बने। भोगान्तराय व उपभोगान्तराय नामक दोनों कर्मों का निवारण करके सम्पूर्ण भोग (अष्ट गुणों) के भोक्ता बने हैं।

इस कक्षा पर आत्मा अनन्त दान, अनन्त लाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग, अनन्त वीर्य नामक पाँचों लब्धियों को प्राप्त करता है।

मूल : ए अढार दूषण वर्जित तनु, मुनिजन वृन्दे गाया।

अविरति रूपक दोष निरूपण, निर्दूषण मन भाया हो॥म०॥१०॥

शब्दार्थ : अढार-अठारह, दूषण-दोष, वर्जित-रहित, तनु-स्वरूप, अविरति रूपक दोष निरूपण-अविरति वगेरे दोषों का रूपक देकर निरूपण किया है, निर्दूषण-दोष रहित, मन भाया-मन को पसन्द आये हैं।

भावार्थ : अठारह दोष (१) अज्ञान (दूसरी गाथा) (२) निद्रा (तीसरी गाथा) (३) मिथ्यात्व (चौथी गाथा) (४) हास्य (५) अरति (६) रति (७) शोक (८) दुगंच्छा (९) भय (पाँचमी गाथा) (१०) राग (११) द्वेष (१२) अविरति (छट्ठी गाथा) (१३) वेदोदय (सातवीं गाथा) (१४) दानान्तराय (१५) लाभान्तराय (आठवीं गाथा) (१६) वीर्यान्तराय (१७) भोगान्तराय (१८) उपभोगान्तराय (नवमी गाथा)।

उपर्युक्त अठारह दोषों से रहित स्वरूप वाले जिनका मुनि जनों ने भी गुणगान किया है। अविरति वगैरह दोषों का रूपक से वर्णन किया गया है। ऐसे दोष रहित जिन देव मेरे मन को पसन्द आये हैं।

(अज्ञान, निद्रा, मिथ्यात्व का वर्णन अपराधिन स्त्री के रूप में किया गया है। छः कषायों के भाग जाने को कुत्ते के रूपक में वर्णित किया है।)

मूल : इण विध परखी मन विशरामी, जिनवर गुण जे गावे।
दीन बन्धुनी महेर नजर थी,
'आनन्दघन' पद पावे हो॥म०॥११॥

शब्दार्थ : इण विध-इस प्रकार से, परखी-परखकर, मन विशरामी-मन को शान्तिदायक, दीन बन्धु-भाव से दीन जीवों को आत्म गुणों से समृद्ध करने में भाई समान, महेर नजर-कृपा दृष्टि।

भावार्थ : इस प्रकार परखकर, मन को शांति दायक जिनेश्वर देव के जो भी गुणगान करता है, वह दीन बन्धु (जिन देव) की कृपा दृष्टि से मोक्ष पद को प्राप्त करता है।

- अज्ञानता-मोहमूढता, महामिथ्यात्व, तीव्र राग संक्लेश आदि के अर्थ में प्रयुक्त होती हैं ऐसी अज्ञानता कहो अज्ञान कहो एक ही है। अज्ञान हिंसादि सभी पापाचरणों से विशेष दुःख को देनेवाला है अज्ञान आत्मा में रागादि भावों की प्रचूरता होती है। उससे उसका पापाचरण अतीव संक्लेश से युक्त होगा। अतः अशुभ कर्म का बन्ध तीव्रता से होगा उसका विपाक कटु नहीं विशेष कटु होगा। अर्थात् दूसरे पापकार्यों से अज्ञान विशेष दुःखदायी है। "समाधान की ज्योत"

२० श्री मुनिसुव्रत स्वामी जिन स्तवन

इस स्तवन में आत्मा का स्वरूप कैसा हो तो उसका मोक्ष हो शके? (बंध-मोक्ष का स्वरूप) और आत्मा की कैसी अवस्था में मोक्ष हो सकता है? इत्यादि प्रश्नों का समाधान दर्शाया है।

मूल : मुनिसुव्रत जिन राज, एक मुज विनती निसुणो। टेर।
आतम तत्त्व कयुं जाणुं? जगदगुरु एह विचार मुज कहियो।
आतम तत्त्व जाण्या विण,
निर्मल चित्त समाधि नवि लहियो ॥मु०॥१॥

शब्दार्थ : निसुणो-सुनो, कयुं-कैसे?, जाणुं-मालुम करूं, जाण्या विण-जाने बिना, लहियो-प्राप्त करना।

भावार्थ : हे मुनि सुव्रत जिन राज (या सुव्रतधारी मुनियों के राजा रूप जिनेश्वर देव!) मेरा एक निवेदन सुनो। आत्म तत्त्व को किस प्रकार से जानें? यह बात मुझे कहें। क्योंकि आत्म तत्त्व को जाने बिना शुद्ध आत्म-समाधि (आत्मा की शान्ति) प्राप्त नहीं की जा सकती।

मूल : कोई 'अबन्ध आतम तत्त्व' माने किरिया करतो दीसे।
'किरिया तणुं फल कहो कुण भोगवे'
एम पूछयुं चित्तरीसे ॥मु०॥२॥

शब्दार्थ : अबन्ध-बंधन रहित, आतम तत्त्व-आत्मा का तात्त्विक स्वरूप, माने-मानता है, किरिया-क्रिया, धर्म क्रिया, दीसे-दीखता है, कुण-कौन, रीसे-क्रोधित होना, नाराज होना।

भावार्थ : स्तवनकार श्री ने आत्मा के स्वरूप के संबंध में अन्य दर्शनकारों के मत का विवेचन करते हुए कहा है कि-कोई आत्मा को बंधन रहित (निर्लेप) एकान्त रूप में मानते हैं, फिर भी वे स्वयं के मतानुसार धार्मिक क्रियाएँ करते हुए दिखायी देते हैं। उनके मत के अनुसार यदि आत्मा एकान्त रूप से निर्लेप है तो उन क्रियाओं का फल कौन भोगेगा? (यह स्पष्ट विरोधाभास है) ऐसा पूछने पर उनका चित्त अप्रसन्न हो जाता है।

मूल : जड़चेतन ए आतम एकज, स्थावर जंगम सरखो।
सुख दुख संकर दूषण आवे, चित्त विचारी जो परीखो ॥मु०॥३॥

शब्दार्थ : जड़-निर्जीव, चेतन-सचेत, ज्ञान सहित जीव, स्थावर-स्थिर पदार्थ, जंगम-गतिशील, चलते फिरते पदार्थ, सरखो-समान, दूषण-दोष, परीखो-परखो, संकर-अलग अलग पदार्थों के अलग अलग लक्षण एक ही पदार्थ में मिश्रित होवें उसे संकर कहते हैं।

भावार्थ : कोई अन्य मतावलम्बी निर्जीव व सजीव आत्मा को एक ही मानते हैं। सचराचर एकात्मक है। ऐसा मानते हैं। ऐसा मानने से स्थिर व जंगम पदार्थ एक समान होने चाहिए, जब कि जड़ सुख दुःख रहित है। चेतन सुख दुःख की अनुभूतिवाला है। दोनों लक्षणों को एक ही रूप में घटित मानना संकर नामक दोष है तथा परस्पर असंगत है। दोनों जड़ व चेतन समान हैं ही नहीं। ऐसा चित्त विचार करके, परीक्षा करके जानो समझो।

मूल : एक कहे 'नित्य ज आतम तत्त, आतम दरिसण लीनो।
कृत विनाश अकृतागम दूषण, नवि देखे मति हीणो।।मु०।।४।।

शब्दार्थ : आतम दरिसण लीनो-आत्म दर्शन में लीन, केवल अद्वैतवादी, ब्रह्मैक्यवादी, कृत विनाश-किया हुआ नष्ट होना, कारण सामग्री होने पर भी कार्य की उत्पत्ति न होना, निष्फल क्रिया, अकृत-नहीं किया हुआ, अकृतागम-नहीं की हुई क्रिया के भी फल की प्राप्ति, कारण बिना भी कार्य की उत्पत्ति, मति हीणो-बुद्धि हीन, तत्त्व ज्ञान में अल्प बुद्धि।

भावार्थ : अद्वैतवादी एकान्त निश्चय से आत्म तत्त्व को नित्य कहते हैं। परन्तु वे तत्त्व ज्ञान में अल्प बुद्धि के कारण से कृत विनाश व अकृतागम नामक दोषों को नहीं देख पा रहे हैं।

आत्मा को एकान्त निश्चय से नित्य एक रूप ही मानने में दोष है। किये हुए कर्मों के फल अनुसार परिवर्तन होता ही रहता है।

जैन दर्शन के अनुसार आत्मा नित्य है किन्तु पर्याय दृष्टि से अनेक रूपों में भासित भी है।

मूल : सौगत मत रागी कहे वादी, 'क्षणिक ए आतम' जाणो।
बन्ध मोक्ष सुख दुख नवि घटे, एह विचार मन आणो ।।मु०।।५।।

शब्दार्थ : सौगत मत-क्षण वादी मत, अनित्य वादी मत, बौद्ध मत, रागी-प्रेम रखनेवाले, वादी-वाद करनेवाला, क्षणिक-क्षणभंगुर।

भावार्थ : वाद करनेवाला (बौद्ध मतावलम्बी) क्षणिकवादी आत्मा को क्षणभंगुर-प्रति पल नाशवान कहते हैं।

परन्तु यदि आत्मा प्रति पल नाशवान है तो किये हुए कर्मों का बन्ध, मोक्ष, सुख, दुःख किसे होता है? यह मन में विचार करो। क्या कर्म करनेवाला आत्मा दूसरा व भोगनेवाला आत्मा दूसरा होता है? यह तर्क संगत नहीं है। अतः कर्त्ता भोक्ता रूप में आत्म तत्त्व को नित्य मानना ही पड़ेगा।

यह विश्व अनादि अनन्त काल से है। इसकी अखण्डता को ध्यान में रखकर कुछने एकान्त से नित्यता का प्रतिपादन किया है। दूसरी और वैरागी आत्मा की दृष्टि में सांसारिक समस्त पदार्थ निरूपयोगी, त्याज्य, नश्वर हैं। अतः उन्होंने एकान्त निश्चय से अनित्यता का प्रतिपादन किया है।

भिन्न भिन्न अपेक्षाओं से दोनों तथ्य सही हैं। पर एकान्त से व्यक्त करने में भूल घटित होती है।

मूल : भूत चतुष्क वर्जित आतम तत्त, सत्ता अलगी न घटे।
अंध शकट जो नजरे न देखे, तो शुं कीजे शकटे ॥मु०॥६॥

शब्दार्थ : भूत चतुष्क-पृथ्वी, पानी, अग्नि व वायु नामक चार भूत पदार्थ, जड़-पदार्थ, वर्जित-रहित, आतम तत्त-आत्म तत्त्व, शकट-गाड़ी, बैलगाड़ी।

भावार्थ : प्रत्यक्ष प्रमाणवादी चार्वाक मतानुसार पृथ्वी, पानी, अग्नि व वायु नामक चार जड़ पदार्थों से रहित आत्म तत्त्व है ही नहीं, क्योंकि संसार में इनसे अलग आत्म सत्ता घटित ही नहीं होती है (प्रमाणित नहीं होती है) ये चार ओर पाँचवां आकाश मिलकर ही आत्मा है।

इसके प्रत्युत्तर में कहा है कि किसी अंधे को यात्रा हेतु गाड़ी में बैठना है, पर वह अंधा होने से गाड़ी को देख नहीं पाता है, तो सत्यवादी, विश्वासी व्यक्ति के कथन पर विश्वास करके गाड़ी को सत्य जानकर उसमें बैठता है। अतः अंधे व्यक्ति के लिए गाड़ी प्रमाण से उपलब्ध नहीं है फिर भी गाड़ी तो है ही। गाड़ी के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता, अतः प्रत्यक्ष प्रमाण के अभाव में आत्मा के अस्तित्व को जड़ पदार्थों से भिन्न नहीं मानने में भूल है।

मूल : एम अनेक वादि मत विभ्रम, संकट पडियो न लहे।
चित्त समाधि, ते माटे पूछुं, तुम विण तत्त कोई न कहे ॥मु०॥७॥

शब्दार्थ : एम-इस प्रकार से, वादि-वाद विवाद में, विभ्रम-भ्रमणा, संशय, संकट-कष्ट।

भावार्थ : उपर्युक्त प्रकार से (गाथा २ से ६ तक) अनेक मतों की भ्रमणा रूपी संकट में पड़ा हुआ साधक चित्त की समाधि प्राप्त नहीं कर पाता है, अतः मैं आपसे पूछता हूँ (आत्म तत्त्व को कैसे जाने-प्रथम गाथा) क्योंकि आपके (अनन्त गुणों के धारक सर्व ज्ञानी जिनेश्वर देव) सिवाय कोई भी आत्म तत्त्व का शुद्ध स्वरूप नहीं कह सकता।

मूल : वलतुं जग गुरु एणी परे भाखे, पक्ष पात सब छंडी।
राग द्वेष मोह पख वर्जित, आतमशुं रढ मंडी ॥मु०॥८॥

शब्दार्थ : वलतुं-प्रत्युत्तर, जग-गुरु-जगत् के गुरु, ज्ञान के भण्डार, एणी परे-इस प्रकार से, भाखे-कहते हैं, छंडी-छोड़कर, पख-पक्ष-पक्षपात, वर्जित-रहित, रढ-दृढ़तापूर्वक, रढमंडी-दृढ़तापूर्वक मानना।

भावार्थ : उपर्युक्त प्रश्न (प्रथम गाथा) के प्रत्युत्तर में जगत् गुरु श्री जिनेश्वर देव इस प्रकार से कहते हैं कि सब मतों के पक्षपात को छोड़ दो। तथा राग, द्वेष, मोह व किसी भी प्रकार के पक्ष से रहित आत्मा है, ऐसे निर्मल, अनन्त गुण मय आत्मा को मानकर उसके साथ में दृढ़ता पूर्वक एकाग्र होओ।

मूल : आतम ध्यान करे जे कोऊ, सो फिर इणमें नावे।
वाग जाल बीजुं सहु जाणे, एह तत्त्व चित्त चावे ॥मु०॥९॥

शब्दार्थ : आतमध्यान-आत्मा का एकाग्र निर्विकल्प ध्यान, जे कोऊ-जो कोई भी, इणमें-इस वाद-विवाद में, नावे-न आवे, वाग्जाल-वाणी-विलास, वाद-विवाद, जाणे-जानना, मानना, चावे-चाहता है।

भावार्थ : जो कोई भी उपर्युक्त प्रकार से निर्मल आत्मा के निर्विकल्प ध्यान में लीन होता है। वह फिर से उपर्युक्त संशय (गाथा २ - ६) में नहीं पड़ता है। वह साधक अन्य समस्त को केवल बातों का पुलिंदा (शब्दों का विस्तार रूप जाल) जानकर (उस सबसे दूर होकर) केवल आत्म तत्त्व को ही चित्त में चाहता है।

मूल : जेणे विवेक धरी, ए पख ग्रहियो, ते तत्त्व ज्ञानी कहिये।
श्री मुनि सुव्रत कृपा करो,
तो आनन्द-घन-पद लहिये ॥मु०॥१०॥

शब्दार्थ : जेणे-जिसने, ए पख-यह पक्ष, मत।

भावार्थ : जिसने भी विवेक पूर्वक इस मत (सर्व पक्षपात छोड़कर, आत्मा के समस्त गुणों, पर्यायों को गौणकर, आत्मा को आत्मा के विषय में आत्मा की सहायता से ही लीन करनेवाले मत) को ग्रहण किया है, उसे ही तत्त्व ज्ञानी कहा जाता है। यही तत्त्वज्ञान की पराकाष्ठा है। स्व आत्म द्रव्य के अलावा अन्य सब की महा उपेक्षा करने में सामर्थ्यवान् आत्मा ही सच्चा, पूर्ण और तत्त्व ज्ञानी कहलाता है।

स्तवनकार श्री कहते हैं कि हे श्री मुनिसुव्रत जिन देव! आप कृपा करो (आत्म तत्त्व जानने में आलंबन बनो) तो साधक को आनन्द घन पद (मोक्ष) की प्राप्ति हो।

आत्मा है, आत्मा के गुण हैं, आत्मा का आध्यात्मिक विकास होता है, जिसका अंतिम फल मोक्ष है। आध्यात्मिक विकास का विज्ञान है। उस विज्ञान को बताने, समझाने वाले शास्त्र हैं। अमुक हद तक शास्त्रों की सहायता आवश्यक है, तत्पश्चात् उनकी आवश्यकता रहती नहीं। उस कक्षा तक पहुँचे हुए आत्मा को शास्त्रों की सहायता की आवश्यकता नहीं रहती है, उन्हें यह सब वाग्जाल समान लगता है।

समस्त शास्त्रों का अभ्यास केवल दिशा निर्देश करता है। शास्त्रों की सैकड़ों युक्तियों से भी विशुद्ध आत्मानुभव नहीं किया जा सकता है। वह तो स्वप्रयत्न से ही संभव है।

२१ श्री नमिनाथ जिन स्तवन

जगत् के अनेक विद्वानों ने जगत् को, आत्मा को अलग-अलग दृष्टिकोणों से देखा, विचारा, जाना, अभ्यास किया। उन दृष्टिकोणों को दर्शन कहा गया है। जो लोक प्रसिद्ध मुख्य रूप से ६ हैं (सांख्य, योग, सुगत, मीमांसक-वेदान्त, लोकायतिक-चार्वाक, जैन)।

जैनदर्शन में अवलोकन के अनेकविध दृष्टिकोणों का समावेश है। अर्थात् छःओं दर्शनों का समावेश है। लोक प्रसिद्ध छः दर्शन जिनेश्वर भगवान् के अंग रूप में कैसे हैं? यह वर्णन इस स्तवन में है।

मूल : षट् दरिसण जिन अंग भणीजे, न्यास षडंग जो साधे रे।
नमि जिनवरना चरण उपासक, षड दरिसण आराधे रे ॥ष०॥१॥

शब्दार्थ : षट् दरिसण-छः दर्शन, जिन अंग-जिनेश्वर के अंगों में, भणीजे-घटित करना, न्यास-रचना, स्थापना, षडंग-छः अंगों में, साधे-साधना, चरण-चारित्र, आराधे-आराधना, पूजना।

भावार्थ : जिनेश्वर देव के छओं अंगों(२ पैर, २ हाथ, पेट, मस्तक) में छओं दर्शनों की स्थापना घटित की जावें तो छओं दर्शन प्रभु के छओं अंगों में घटित होते हैं। अतः नमि जिनेश्वर के चरणों के उपासक छओं दर्शनों के उपासक बनते हैं। या नमन करके जिनेश्वर चारित्र के आराधक छओं दर्शनों की आराधना करते हैं।

मूल : जिन सुर पादप पाय वखाणुं, सांख्य जोग दोय भेदे रे।
आतम सत्ता विवरण करतां, लहो दुग अंग अखेदे रे ॥ष०॥२॥

शब्दार्थ : जिन-जैन दर्शन, सुर पादप-देवताओं का वृक्ष, कल्पवृक्ष, पाय-पैर, वखाणुं-वर्णन करता हूँ, सांख्य-कपिल मुनि प्रतिपादित सांख्य दर्शन, जोग-पतंजलि मुनि वर्णित योग दर्शन, नैयायिक मत, लहो-जानो, दुग-दो, अखेदे-खेद रहित, सहजता से।

भावार्थ : स्तवनकार श्री कहते हैं कि जिनदर्शन रूपी कल्पवृक्ष के पैरों का वर्णन करता हूँ, ये सांख्य दर्शन व योग दर्शन नामक दो भेद हैं। दोनों दर्शन आत्मा की सत्ता का जो वर्णन करते हैं उन्हें जैन दर्शन के दो अंगों के रूप में ही सहजता से ग्रहण करो।

आत्मा के अस्तित्व को समझाने का कार्य यह दोनों दर्शन करते हैं। आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किये बिना कोई भी आत्मवादी दर्शन खड़ा नहीं हो सकता है। अतः यह दोनों दर्शन जैनदर्शन के पैर रूप हैं।

मूल : भेद अभेद सुगत मीमांसक, जिनवर दोय कर भारी रे।

लोकालोक अवलंबन भजीये, गुरु गमथी अवधारी रे ॥ष०॥३॥

शब्दार्थ : भेद-भिन्नता, अभेद-एकता, सुगत-अनित्यवादी, बौद्ध दर्शन, मीमांसक-विचारक, मीमांसक-वेदान्त दर्शन, दोय-दो, कर-हाथ, भारी-बड़ा महत्वपूर्ण, लोक-पंचास्तिकाय जगत्, अलोक-विश्व के बाहर का क्षेत्र, अवलंबन-आधार रूप, भजीये-आश्रय लीजिए, गुरुगम थी-ज्ञानी गुरु महाराज के मार्गदर्शन से, अवधारी-बुद्धिपूर्वक समझकर, मन में चिन्तन-मनन करके।

भावार्थ : भिन्नता व अभिन्नता का प्रतिपादन करनेवाले बौद्ध व उत्तर मीमांसा-वेदान्त दर्शन ये दोनों जिनेश्वर प्रभु के (महत्त्वपूर्ण अंग) हाथ हैं।

उक्त दोनों दर्शन जगत् व जगत् के बाहर के क्षेत्र के अवलंबन रूप, ज्ञानी गुरु भगवंत के मार्गदर्शन में जानकर मन में धारण करें।

बौद्ध दर्शन के प्रतिपादक गौतम बुद्ध ने वैरागी होने से जगत् के प्रति उदासीनता के भाव से, बाल जीवों में वैराग्य भावना को बढ़ाने की भावना से 'जगत् के समस्त पदार्थ क्षणिक हैं, नाशवान् हैं, पल पल परिवर्तनशील हैं, अनित्य हैं' ऐसा उपदेश दिया। इस प्रकार से बौद्धदर्शन भिन्नतावादी है। एकांत पर्यायार्थिक नय का समर्थक है। अनित्यवादी है।

मीमांसक दर्शन के दो भेद पूर्व मीमांसा व उत्तर मीमांसा में दूसरे का नाम वेदान्त दर्शन है जिसके मुख्य ग्रन्थ उपनिषद हैं। वेदान्त का मूल सिद्धान्त 'प्रत्येक पदार्थ भिन्न-भिन्न होते हुए भी समग्र रूप में एक तत्त्व ब्रह्म रूप है, एक ही ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है' इस प्रकार से द्रव्यार्थिक नय की एकान्त दृष्टि से नित्यवादी है, अभेदवादी है।

जैनदर्शन की विश्व व्यवस्था भेद व अभेद दोनों तत्त्वों पर व्यवस्थित है। अतः उक्त दोनों दर्शन जैन मत के हाथ रूप हैं।

मूल : लोकायतिक कुख जिनवरनी, अंश विचारी जो कीजे रे।
तत्त्व विचार सुधारस धारा, गुरुगम विण किम पीजे रे ॥ष०॥४॥

शब्दार्थ : लोकायतिक-चार्वाक दर्शन, नास्तिक दर्शन, प्रमाणवादी, कुख-कुक्षी, नाभि, पेट, अंश-एक भाग, कीजे-करे, घटित करे, सुधा-अमृत, गुरुगम-गुरु का मार्गदर्शन, सहयोग, विण-बिना, किम-कैसे, पीजे-पिये, रसास्वादन करे, गुरुगम विण किम पीजे रे-गुरु के मार्गदर्शन के सिवाय कैसे उसका रसास्वादन करें?

भावार्थ : प्रमाण के अंश रूप नय से विचार करके जो घटित करे तो चार्वाक प्रतिपादित प्रमाणवादी नास्तिक दर्शन जिनेश्वर प्रभु का पेट है। ज्ञानी गुरु भगवन्त के मार्गदर्शन बिना तत्त्व विचार रूपी इस अमृत रस धारा का पान कैसे किया जा

सकता है?

चार्वाक दर्शन पृथ्वी, पानी, अग्नि व वायु इन चार दृष्टिगोचर होते पदार्थों को ही मानता है। यह प्रमाण को मान्यता देता है। तर्करहित अन्ध विश्वास का विरोधी है। प्रमाण के अभाव में आत्मा के अस्तित्व को नहीं मानता है। चारों पदार्थों के संयोग को ही चेतना युक्त प्राणी का कारण मानता है।

तत्त्वज्ञान की प्राथमिक कक्षा में प्रवेश करते जिज्ञासु को स्थूल रूप में सबसे पहले विश्व का ज्ञान कराने में यह भी सहायक है। यहीं से आगे बढ़कर जिज्ञासु प्रगति करता है। अतः इसे जिनेश्वर प्रभु के पेट रूप में माना है। जैनदर्शन भी तर्करहित अन्ध विश्वास का विरोधी है। अतः चार्वाक दर्शन भी जैनदर्शन का अंग रूप है।

मूल : जैन जिनेश्वर वर उत्तम अंग, अन्तरंग बहिरंगे रे।
अक्षर न्यास धरा आराधक, आराधे धरी संगे रे ॥ष०॥५॥

शब्दार्थ : *वर-बड़ा, महान, उत्तम अंग-शरीर का श्रेष्ठ भाग-मस्तक, अन्तरंग-अन्दर से, बहिरंग-बाहर से, अक्षरन्यास-अक्षर की स्थापना करनी, धरी-ग्रहण करके, संगे-संग से, परिचय से।*

भावार्थ : जैनदर्शन (अन्दर से व बाहर से) जिनेश्वर प्रभु के उत्तम अंग मस्तक के रूप में शोभायमान है। आराधक प्रभु के शरीर के अंगों में अक्षर न्यास करके उक्त समस्त का संग ग्रहण करके आराधना कर सकता है।

जैन दर्शन सर्वांशी है, सर्व नय आश्रित है। प्रत्येक जीव को उसकी स्थिति अनुसार (प्राथमिक कक्षा से लेकर केवलज्ञानी तक के आत्म विकास क्रम के अनुसार) मार्गदर्शन देने में समर्थ है। अतः यह उत्तम अंग (मस्तक) रूप है।

जिनेश्वर अर्थात् केवल ज्ञान प्राप्त करके त्रिकाल व्यापक जैन शासन की व्यवस्था स्थापित करनेवाले प्रभु हैं।

(१) **शासन :** आज्ञा प्रधान व्यवस्था तंत्र।

(२) **धर्म :** आध्यात्मिक विकास (आचार प्रधान शब्द है)।

(३) **दर्शन :** किसी भी दृष्टिकोण से विश्व का अवलोकन। (ज्ञान प्रधाान शब्द है।)

मूल : जिनवरमां सघला दर्शन छे, दर्शने जिन वर भजना रे।
सागरमां सघली तटिनी सही,
तटिनीमां सागर भजना रे ॥ष०॥६॥

शब्दार्थ : *भजना-हो या न हो ऐसे दो विकल्प, सघली-सब, तटिनी-नदी, सही-निश्चित रूप से।*

भावार्थ : जैसे समुद्र में समस्त नदियाँ समाहित हैं, परन्तु नदियों में समुद्र है या नहीं है। संपूर्ण रूप से समुद्र नहीं है। इसी प्रकार जिनेश्वर देव में समस्त दर्शन समाहित हैं, चाहे अन्य दर्शनों में जिनेश्वर देव हो या नहीं हों। अन्य दर्शनों में एकांतिक दृष्टि से सम्पूर्ण रूप में जिनेश्वर नहीं हैं।

मूल : जिन स्वरूप थई जिन आराधे, ते सही जिन वर होवे रे।
भृंगी इलिका ने चटकावे, ते भृंगी जग जोवे रे ॥ष०॥७॥

शब्दार्थ : भृंगी-भ्रमरी, इलिका-लट, चटकावे-ध्यान करे।

भावार्थ : जो आत्मा अपने आत्मस्वरूप को परमात्म स्वरूप मानकर आराधना करता है वही जिन हो जाता है। उदाहरण रूप में कहा है कि जिस प्रकार भ्रमरी इलिका को (लट को) लाकर कादव के घर में पेक कर उस पर स्वयं भ्रमरी अपनी आवाज से भ्रमण करती है उस समय वह इलिका अन्दर रही हुई अपने आपको भ्रमरी मान लेती है और वह भ्रमरी के ध्यान में एकमेक बनती है तब वह वहां ही भ्रमरी रूप में परिवर्तित होकर बाहर आती है। अर्थात् जिस प्रकार इलिका भ्रमरी के ध्यान से भ्रमरी बनी वैसे ही साधक आत्मा अपने आपको परमात्मा मानता है। (सोहं सोहं का ध्यान करता है) तभी वह परमात्मा बनता है।

मूल : चूर्णि भाष्य सूत्र निर्युक्ति, वृत्ति परंपर अनुभव रे।
समय पुरुषना अंग कह्या ए, जे छेदे ते दुर्भव रे ॥ष०॥८॥

शब्दार्थ : सूत्र-अधिकतम अर्थ का न्यूनतम अक्षरों में संग्रह-मूल सूत्र, निर्युक्ति-पदों के अक्षरों को अलग-अलग करके विवेचना करने की विधि, भाष्य-सूत्र व निर्युक्ति का संक्षेप में कथन, चूर्णि-भाष्य की स्पष्ट करनेवाली प्राकृत भाषा में टीका, वृत्ति-वर्णन, अधिक विस्तारपूर्वक रहस्य को खोलनेवाली कृति, परंपर-अनुभव-परम्परा रूप में पुरातन काल से चला आ रहा अनुभव ज्ञान, समय पुरुष-शास्त्र रूपी पुरुष, छेदे-नष्ट करे, दुर्भव-दूर भव्य, लंबे समय में मुक्ति को पानेवाला, लम्बे समय तक भव भ्रमणा में भटकनेवाला।

भावार्थ : परमेश्वर के उत्तम अंग रूप जैनदर्शन के छः अंग हैं। (१) गणधरादि कृत सूत्र (२) पूर्वधर कृत पदभंजना निर्युक्ति (३) सूत्र का संक्षिप्त विवेचन भाष्य (४) पूर्वधर कृत पद की व्याख्या-संक्षिप्त टीका-चूर्णि (५) वृत्ति-विस्तृत विवेचन व (६) गुरु सम्प्रदाय से प्राप्त परम्परागत अनुभव ज्ञान।

जो कोई भी इनका नाश करता है वह जीव लम्बे समय तक भव भ्रमणा में भटकता रहता है।

मूल : मुद्रा बीज धारणा अक्षर, न्यास अर्थ विनियोगे रे।
जे ध्यावे, ते नवि वंचीजे, क्रिया अवंचक भोगे रे ॥ष०॥९॥

शब्दार्थ : मुद्रा-आकृत्ति, बीज-मंत्र का मूल बीजक, धारणा-इंद्रियों को जीतने

के पश्चात् ध्यान की पूर्व भूमिका रूप धारणा, अक्षर न्यास-मंत्राक्षरों की स्थापना, अर्थ-अर्थ करके, विनियोगे-अन्य पात्र जीवों को अर्थ का बोध कराना, वंचीजे-वंचित रहना।

भावार्थ : जो ध्याता मुद्रा पूर्वक, मंत्र के बीजाक्षरों से, धारणापूर्वक अक्षर न्यास करके, अर्थ करके, विनियोग करके, जिनेश्वर देव का ध्यान करता है, वह कभी वंचित नहीं रहता है। क्रिया अवंचक योग का भोग करता है। अनुभव करता है और परम्परा से 'फलावंचक योग' को प्राप्त करता है।

मूल : श्रुत अनुसार विचारी बोलुं, सुगुरु तथा विध न मिले रे।
किरिया करी न वि साधी शकिये,
ए विष-वाद चित्त सघले रे ॥ष०॥१०॥

शब्दार्थ : तथा विध-उस प्रकार के, विष-वाद-खेद।

भावार्थ : स्तवनकार मुनि श्री इस क्रिया अवंचक योग के उत्कृष्ट ध्यान विषय का स्वयं का अज्ञान सखेदपूर्वक स्वीकार करते हुए कहते हैं कि 'मैं' शास्त्र के अनुसार विचार करके कहता हूँ कि तथा प्रकार के ज्ञानी गुरु महाराज के नहीं मिलने से केवल क्रिया करके मोक्ष के प्रबल कारण भूत ध्यान की साधना नहीं कर सकता हूँ। यह खेद चित्त में व्याप्त है।

मूल : ते माटे उभा कर जोड़ी, जिनवर आगल कहिये रे।
समय चरण सेवा शुद्ध देजो,
जिम आनन्द घन लहिये रे ॥ष०॥११॥

शब्दार्थ : समय चरण सेवा-शास्त्र ज्ञान रूपी सम्यग् ज्ञान व सम्यग् चारित्र की सेवा, या शास्त्र रूप पुरुष के चरणों की सेवा।

भावार्थ : इस हेतु जिनेश्वर के आगे हाथ जोड़कर, खड़े होकर निवेदन करता हूँ कि जिस प्रकार से आनन्द समूह रूप मोक्ष की प्राप्ति हो वैसे शास्त्र रूपी पुरुष के चरणों की सेवा का अवसर प्रदान करें।

- अत्यंत परिचित पदार्थ में अनादर बुद्धि एवं नवीन में प्रीति होती है यह जो किंवदन्ती (लौकोक्ति) प्रसिद्ध है उस लौकोक्ति को दोषों में आसक्त एवं गुणों से परांगमुख होकर तू क्यों असत्य कर रहा है क्योंकि आत्मा के लिए दोष अत्यन्त परिचित है, गुण तो नये हैं अतः दोषों के प्रति अनादर बुद्धि एवं गुणों के प्रति प्रीति उत्पन्न कर, इस लौकोक्ति को सत्य सिद्ध कर।

"समाधान की ज्योत"

२२ श्री नेमिनाथ जिन स्तवन

श्री नेमिनाथ भगवान व राजीमती पूर्व के आठ भवों से जीवनसाथी थे। नवमें भव में बारात सहित राजीमती के घर की तरफ जाते हुए श्री नेमिनाथ को मालूम हुआ कि उनकी बारात के स्वागतार्थ मांसाहारी भोजन हेतु अनेक पशुओं का वध होगा। यह जानकर वैरागी राजकुमार ने अपना रथ वापस मोड़ लिया। पूर्व प्रेम के कारण से राजीमती को इससे आघात लगा। श्री नेमिनाथ ने संसार त्यागकर साधु जीवन अंगीकार किया। श्री राजीमती ने भी उनका अनुसरणकर दीक्षा ग्रहण की।

ध्याता राजीमती ने श्री नेमिनाथ प्रभु को ध्येय माना। फिर भी श्री नेमिनाथ प्रभु से राजीमती पहले परमात्मा बनकर मोक्षगामी बनीं।

बाह्य ध्येय भी सविकल्प ध्यान की दशा में निमित्त मात्र होता है। जब कि निर्विकल्प ध्यान की स्थिति में स्वात्म द्रव्य ही ध्येय होता है।

इस सबको लक्ष्य में रखकर कविराज ने इस स्तवन की रचना की है।

मूल : अष्ठ भवान्तर वालही रे, तु मुज आतमराम मनरा व्हाला।
मुगति स्त्री शुं आपणे रे,
सगपण कोई न काम मनरा व्हाला ॥१॥

शब्दार्थ : अष्ठ-आठ, भवान्तर-भवों में, वालही-प्रेमी, आतमराम-आत्मा में रमण करने वाला, आत्मा में निवास करने वाला, मन रा व्हाला-मन के प्रियतम, मुगति स्त्री-मुक्ति रूपी स्त्री, मोक्ष पद, सगपण-सगाई, संबंध।

भावार्थ : हे मेरे मन के प्रियतम, आठ भवों के मेरे प्यारे! तू ही मेरी आत्मा में रमण करता है। मुक्ति रूपी स्त्री से संबंध रखने की (वैराग्य अंगीकार करने की) कोई आवश्यकता नहीं है।

मूल : घर आवो हो! वालिम! घर आवो मारी आशाना विशराम।म०।
रथ फेरो हो! साजन! रथ फेरो साजन!
मारा मनोरथ साथ ॥म०॥२॥

भावार्थ : हे प्रियतम! तुम घर आओ! हे मेरी आशाओं के विश्रामस्थल, मेरी आशाओं की पूर्णता के आधारस्तम्भ तुम घर आओ। हे साजन, रथ को मेरे घर की तरफ मोड़ो। मेरे मनोरथ-कामनाएँ-इच्छाएँ आपके आने के साथ जुड़ी हैं, अतः रथ को वापस फेरो।

मूल : नारी पख्यो शो नेहलो रे, साच कहे जगनाथ–मनरा०।
ईश्वर अरधांगे धरी रे, तुं मुज झाले न हाथ–मनरा० ॥३॥

शब्दार्थ : पखो-एक पक्षीय, नेह-स्नेह, प्रेम, ईश्वर-महादेव, अरधांगे-आधे शरीर रूप में, झाले-झेलना, पकड़ना, ग्रहण करना।

भावार्थ : हे जगनाथ! सच्चा कहना, क्या आप नारी के एक पक्षीय प्रेम को हीन, मूल्य रहित, फालतू समझते हैं? अरे अर्धनारीश्वर महादेव ने भी नारी को आधे अंग रूप में ग्रहण किया है। और तुम मेरा हाथ भी ग्रहण नहीं कर रहे हो!

कवि ने राजकुमारी राजीमती के माध्यम से यह प्रमाणित किया है कि महादेव भी राग के वशीभूत रहे हैं जबकि नेमिकुमार सच्चे रूप में वैरागी, वीतरागी हैं, जो कि आठ भवों के स्नेह को भी एक क्षण में त्यागकर जा रहे हैं।

मूल : पशु जननी करुणा करी रे, आणी हृदय विचार–मनरा०।
माणसनी करुणा नहीं रे, ए कुण घर आचार?–मनरा०॥४॥

शब्दार्थ : हृदय-अंतकरण, करुणा-दया।

भावार्थ : हे प्रियतम! आपने अंतःकरण में पशुओं के प्रति दया का विचार लाकर उनको बंधन मुक्त करवाया पर मुझ मनुष्य पर आपको जरा भी करुणा नहीं, यह आपका कैसा आचार है?

मूल : प्रेम कल्पतरु छेदियो रे, धरियो जोग धतूर–मनरा०।
चतुराई रो कुण कहो रे, गुरु मिलियो जग सूर? मनरा०॥५॥

शब्दार्थ : कल्पतरू-समस्त इच्छाओं की पूर्ति करने वाला कल्पवृक्ष, छेदियो-नाश करना, धरियो-धारण किया, जोग-जोगीपना, सन्यास, धतूर-धतूरा, जोग धतूर-कष्टकारी क्रियाओं वाला योगीपना, कुण-कौन, जग सूर-जगत् में सूर्य समान प्रखर।

भावार्थ : हे बालम! तुमने प्रेम रूपी कल्पवृक्ष का नाश किया तथा कष्टकारी क्रियाओं युक्त सन्यास को ग्रहण किया। आपको ऐसी चतुराई सिखानेवाला जगत् में सूर्य समान प्रखर गुरु कौन है?

मूल : मारुं तो एमां कांई नहीं रे, आप विचारो राज, मनरा०।
राज सभामां बेसतां रे, किसडी वधसी लाज? मनरा० ॥६॥

शब्दार्थ : किसडी-कितनी, वधसी-बढ़ेगी, लाज-इज्जत।

भावार्थ : हे राजन्! मेरा तो इसमें कुछ नहीं है पर आप जरा विचार करो। राज्यसभा में बैठते समय अविवाहित रूप में बैठने पर आपकी इज्जत कितनी बढ़ेगी?

मूल : प्रेम करे जग जन सहु रे, निरवाहे ते ओर, मनरा०।
प्रीत करी ने छोड़ी दे रे, तेह शुं न चाले जोर । मनरा०॥७॥

शब्दार्थ : निरवाहे-निर्वाह करना, निभाना, ओर-अन्य।

भावार्थ : हे प्रीतम! जगत् के समस्त जन प्रेम करते हैं, पर उसे पूर्ण रूप से निभाने वाले अन्य प्रकार के ही होते हैं। जो प्रीत करके छोड़ दे, उस पर क्या जोर चल सकता है?

मूल : जो मनमां एहवुं हतुं रे, निसपति करत न जाण, मनरा०।
निसपति करीने छोडता रे, माणस हुवे नुकशान, मनरा० ॥८॥

शब्दार्थ : एहवुं-ऐसा, इस प्रकार का, निसपति-(उर्दुभाषा का शब्द) मित्रता, प्रेम-संबंध, जाण-जानना, नुकशान-नुकसान, हानि।

भावार्थ : हे नाथ! जो आपके मन में ऐसा था, तो जानते हुए प्रेम संबंध नहीं करना चाहिए था। संबंध करके छोड़ देने से मानव को काफी हानि होती है।

मूल : देतां दान संवच्छरी रे, सहु लहे वंच्छित पोष, मनरा०।
सेवक वंच्छित नवि लहे रे, ते सेवक नो दोष? मनरा० ॥९॥

शब्दार्थ : संवच्छरी-सांवत्सरिक-वार्षिक-तीर्थंकर भगवंत चारित्र ग्रहण करने से पूर्व याचकों को वार्षिक दान देते हैं। सहु-सब, लहे-प्राप्त करे, वंच्छित-वांछित, स्वइच्छानुसार, पोष-पूर्ति।

भावार्थ : हे प्रभु! आप द्वारा वार्षिक दान देने पर सब लोग स्वयं की इच्छानुसार दान प्राप्त करते हैं। पर यह सेविका तो स्वइच्छानुसार आपका साथ प्राप्त नहीं कर सकी, क्या इसमें सेविका का कोई दोष है?

मूल : सखी कहे 'ए शामलो' रे, हुं कहुं 'लक्षण सेत' मनरा०।
इण लक्षण साची सखी रे, आप विचारो हेत। मनरा० ॥१०॥

शब्दार्थ : शामलो-सांवला, लक्षण सेत-अच्छे लक्षणो युक्त, हेत-हित, स्नेह।

भावार्थ : मेरी सहेली ने आपको देखकर कहा कि 'यह तो सांवला है।' तो मैंने कहा कि 'यह उत्तम लक्षणों से युक्त है।' पर अब आप मेरा त्याग करके जा रहे हैं इसके अनुसार मेरी सखी ने सच ही कहा था। अतः आप पुनः हितपूर्वक, स्नेहपूर्वक इस पर विचार करें।

मूल : रागी शुं राग सहु करे रे, वैरागी श्यो राग? मनरा०।
राग बिना किम दाखवो रे, मुगति सुंदरी माग? मनरा० ॥११॥

शब्दार्थ : श्यो-किस प्रकार से, दाखवो-प्रतिपादन करना, स्थापित करना, मुगति सुंदरी माग-मुक्ति रूपी सुंदर स्त्री को प्राप्त करने का मार्ग।

भावार्थ : रागी से समस्त जन राग करें पर वैरागी से राग किस प्रकार संभव है? यदि आप सच्चे वैरागी हैं तो राग के बिना मुक्ति रूपी सुंदरी को पाने के मार्ग का प्रतिपादन कैसे करते हैं?

मूल : एक गुह्य घटतुं नथी रे, सघलो ये जाणे लोक, मनरा०।

अनैकान्तिक भोगवो रे, ब्रह्मचारी गत रोग, मनरा० ॥१२॥

शब्दार्थ : गुह्य-गुप्त बात, रहस्य, घटतुं-घटित होना, समझ में आना, सघलो-समस्त, जाणे-जानता है, अनेकान्तिक-अनेक अन्त युक्त, स्यादवाद, गत रोग-रोग रहित, निर्मल।

भावार्थ : आपका यह रहस्य समस्त जगत् जानता है, फिर भी समझ में नहीं आता है। आप अनेकान्त मत के माननेवाले भोक्ता हो फिर भी ब्रह्मचारी, निरोगी कहलाते हो।

मूल : जिण जोणे तुमने जोऊं रे, तिण जोणे जुओ राज, मनरा०।
एक बार मुजने जुओ रे, तो सिजे मुज काज, मनरा० ॥१३॥

शब्दार्थ : जिण-जिस, जोणे-नजर से, प्रकार से, जुओ-देखो, सीजे-सिद्ध होवे।

भावार्थ : जिस राग भरी दृष्टि से मैं आपको देख रही हूँ, उसी दृष्टि से आप भी मुझे देखें। आप एक बार भी मुझे राग सहित देखें तो मेरा कार्य और मनोरथ सिद्ध हो जायगा।

मूल : मोह दशा धरी भावना रे, चित्त लहे तत्त्व विचार, मनरा०।
वीतरागता आदरी रे, प्राणनाथ! निरधार, मनरा० ॥१४॥

शब्दार्थ : मोह दशा-मोह ग्रस्त अवस्था, वीतरागता-राग-द्वेष रहित अवस्था, आदरी-स्वीकार की, निरधार-निश्चित रूप से।

भावार्थ : हे प्राणनाथ! अब तक तो मैं मोह ग्रस्त होकर विचारणा कर रही थी तथा समग्र घटनाक्रम को सांसारिक दृष्टि से देखकर उपालम्भ दे रही थी पर अब चित्त में तत्त्व विचार करने से प्रकट हुआ कि आपने सच्चे रूप में, निश्चित्त प्रकार से वीतरागता-वैराग्यपना स्वीकार कर लिया है।

पहले मुझे जो भी विपरीत लगता था वह सब अब संगत लग रहा है। आपने संपूर्ण जगत् के समस्त जीवों के प्रति महा करुणा के भाव से संसार त्याग कर, कष्टकारी क्रियाओं रूपी सन्यास को ग्रहण किया, आपके अविवाहित रहने से बाल ब्रह्मचारी के रूप में आपका मान और ज्यादा रहेगा। मात्र पूर्व कृत कर्मों को खपाने हेतु आप सांसारिक जीवन बिता रहे थे। तथा समय आने पर तुरन्त जगत् के प्रेम को छोड़ दिया। यही सच्ची वीतरागता है। आपके द्वारा सांवत्सरिक दान देते समय मैं मेरी इच्छित पूर्ति नहीं पा सकी, पर आपकी कृपा से वैराग्य रूपी महान एवं मोक्ष मार्ग रूपी आत्मिक धन प्राप्त किया है। इस प्रकार से आप उत्तमोत्तम लक्षणों युक्त हैं। आप ही सच्चे वैरागी हैं, जो बिना राग के मोक्ष मार्ग का प्रतिपादन करते हैं। तथा लाख कोशिश के बाद भी राग द्वेष से रहित ही रहते हैं।

मूल : सेवक पण ते आदरे रे, तो रहे सेवक माम, मनरा।

आशय साथे चालिये रे, एहि ज रूडूं काम, मनरा ॥१६॥

शब्दार्थ : सेवक माम-सेवक की मर्यादा, आशय-मनोगत भाव, रूडूं-उत्तम।

भावार्थ : मोक्ष मार्ग का पथिक स्वयं को जिनेश्वर के चरण उपासक, सेवक रूप में मानते हुए मन में विचारणा करता है कि जो मार्ग जिनेश्वर देव ने प्रतिपादित किया है, उसी मार्ग को स्वीकार करुँ, तो ही सेवक की मर्यादा कायम रहती है। यही कर्त्तव्य है। अतः मनोगत भावों के साथ चलूँ यही उत्तम कार्य है।

मूल : त्रिविध जोग धरी आदर्यो रे, नेमनाथ भरतार, मनरा वाला ।
धारण, पोषण, तारणो रे, नव सर मुगताहार, मनरा० ॥१७॥

शब्दार्थ : त्रिविध जोग-तीन प्रकार का योग, मन, वचन, काया का-समापत्ति रूप प्रणिधान, या इच्छा योग, शास्त्र योग, सामर्थ्य योग या योगावंचक, क्रियावंचक, फलावंचक, धरी-धारण करके, आदर्यो-आदर पूर्वक स्वीकार करना, भरतार-स्वामी, मालिक, धारण-आश्रय देना, पोषण-पालन पोषण करना, तारणो-विपदा सागर से बाहर निकालना; पार पहुँचाना, नवसर मुक्ताहार-नव लड़ीयों वाला मोतियों का हार।

भावार्थ : तीन प्रकार के योग सहित श्री नेमिनाथ जिनेश्वर प्रभु को स्वामी रूप में मैंने स्वीकार किया है। वे आश्रयदाता, पालक व तारणहार हैं।

जिस प्रकार से नौ लड़ीयों वाला मोतियों का हार संपूर्ण हृदय पटल को ढँक कर आनन्द व शोभा प्रदान करता है, उसी प्रकार श्री नेमिनाथ प्रभु को हृदय में धारण किया है।

मूल : कारण रूपी प्रभु भज्यो रे, गण्यो न काज अकाज, मनरा०।
कृपा करी मुज दीजीये रे, आनन्द-घन-पद राज मनरा० ॥१७॥

शब्दार्थ : कारण रूपी-प्रबल निमित्त मानकर, काज-कार्य, सफलता, अकाज-निष्फलता।

भावार्थ : हे जिनेश्वर प्रभु! मैंने सफलता या निष्फलता का विचार किये बिना ही आपको प्रबल निमित्त स्वरूप मानकर आपकी भक्ति की है। अतः कृपा करके मुझे मोक्ष का राज्य प्रदान करें।

- केवल शब्दार्थ, वाक्यार्थ या महावाक्यार्थ से अर्थ की सिद्धि नहीं होती। शब्दार्थ, वाक्यार्थ एवं महावाक्यार्थ के साथ एदंपर्यार्थ पूर्वक अर्थघटन किया जाता है तभी वह अर्थ परस्पर अबाधित रहता है।

"समाधान की ज्योत"

२३ श्री पार्श्वनाथ जिन स्तवन

तीर्थंकर परमात्मा केवलज्ञान प्राप्त करके सर्वज्ञ बने। पर शरीर प्रमाण में रहा हुआ आत्मा सब द्रव्यों, सब क्षेत्रों, सब कालों व सब भाव रूपी समस्त ज्ञेयों को कैसे जान सकता है? क्या आत्मा को सर्व व्यापक मानना चाहिए या आत्मा अन्य द्रव्यों के साथ परिणाम पाकर तद्रूप हो सकता है?

भूत व भविष्य के भावों का वर्तमान में अस्तित्व नहीं होता है तो एक ही समय में तीनों कालों के पदार्थों, भावों, पर्यायों का ज्ञान कैसे संभव है ऐसा ही प्रश्न व समाधान स्तवनकार श्री ने प्रस्तुत किया है।

मूल : ध्रुव पद रामी हो स्वामी म्हारा, निःकामी गुणराय सुज्ञानी।
निज गुण कामी हो, पामी तुं धणी,
ध्रुव आरामी हो थाय सुज्ञानी ॥१॥

शब्दार्थ : *ध्रुव पद-मोक्ष स्थान, रामी-रमण करनेवाला, निःकामी-कामना रहित, निष्कामी, गुणराय-गुणों के राजा, निजगुण कामी-स्वयं के गुणों के विकास की इच्छा रखने वाले, ध्रुव-अनन्त शाश्वत, ध्रुव आरामी-शाश्वत सुखों को भोगनेवाला।*

भावार्थ : हे मोक्ष में रमण करनेवाले मेरे स्वामी! निष्कामी, अनन्त गुणों के राजा! अनन्त ज्ञान के धारक प्रभु! स्वयं के गुणों का विकास करने का इच्छुक साधक आत्मा आपको स्वामी रूप में पाकर स्वप्रयत्न से शाश्वत सुख का भोक्ता (मोक्ष का निवासी) होता है।

मूल : सर्वव्यापी कहे सर्व जाणंग पणे, पर परिणमन स्वरूप, सुज्ञानी।
पर रूपे करी तत्त्वपणुं नहीं,
स्व सत्ता चिद् रूप, सुज्ञानी ॥२॥

शब्दार्थ : *सर्व व्यापी-सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त, सर्व जाणंग पणे-समस्त पदार्थों को जानना, पर परिणमन स्वरूप-अन्य रूप में परिणाम पानेवाले स्वरूप वाला, पर रूपे-दूसरे पदार्थ रूप में, स्व रूप से रहित, स्व सत्ता-स्वयं का अस्तित्व, चिद्रूप-ज्ञानमय, चेतनामय।*

भावार्थ : जगत् में प्रत्येक पदार्थ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से स्व स्वरूप में है। तथा इसी अपेक्षा से पर पदार्थ पर-रूप में है। प्रत्येक पदार्थ स्वयं के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में परिणमता है, तथा पर रूप से रहित होता है। यही पदार्थ का स्व स्वरूप व स्व सत्ता है।

कर्म बंधनों से मुक्त, केवलज्ञान के प्रकाश से आलोकित आत्मा सर्व जगत् को जानने वाला होने से सर्व व्यापी कहा गया है। जगत् के प्रत्येक पदार्थ संपूर्ण

रूप में ज्ञान में प्रतिबिम्बित होवें, यही सर्व व्यापकता है। अर्थात् ज्ञान ही ज्ञेय रूप बन जाता है।

पदार्थ स्वरूप को छोड़े बिना पर-रूप में परिणाम कैसे प्राप्त करें? पर-रूप तत्त्वपना नहीं है। स्वसत्ता ही ज्ञानमय चेतनामय है। पर पना पाये बिना सर्वव्यापकता घटित नहीं होती है। तथा सर्वज्ञपना हो तो परपना रहित कैसे हो? स्व व पर दोनों एक साथ कैसे हो?

(१) द्रव्य से परपना :

मूल : ज्ञेय अनेके हो, ज्ञान अनेकता, जल भाजन रवि जेम, सुज्ञानी।
द्रव्य एकत्वपणे गुण एकता,
निज पद रमता खेम, सुज्ञानी ॥३॥

शब्दार्थ : ज्ञेय अनेके-ज्ञेयों के अनेक रूप होने से, ज्ञान अनेकता-ज्ञान की भी अनेकता, जल-पानी, भाजन-बरतन, रवि-सूर्य, जल भाजन रवि-पानी से भरे हुए बरतनों में सूर्य का प्रतिबिम्ब, द्रव्य एकत्वपणे-द्रव्य के एकत्वपने से, गुण एकता-गुणों का भी एकत्वपना, निजपद-स्वयं के पद पर, स्वयं के स्थान पर, रमता-रमण करते हुए, निवास करते हुए खेम-कुशलता, क्षेम, निर्विघ्नता।

भावार्थ : जिस प्रकार पानी से भरे हुए अलग-अलग बरतनों में सूर्य का प्रतिबिम्ब अलग-अलग अनेक रूपों में दिखायी देता है, उसी प्रकार एक ही ज्ञान भी अलग-अलग रूप में अनेकता विभिन्नता लिये हुए भासित होता है। ज्ञेय अनेक होने से ज्ञान भी अनेकता स्वरूप दिखता है।

दूसरी ओर आत्म द्रव्य एक है, अतः ज्ञान गुण भी एक ही होना चाहिए। द्रव्य गुण का निवास है। स्वयं के स्थान पर ही क्षेम-कुशलता रहती है। अतः ज्ञान गुण को एकत्व रूप या अनेक रूप दोनों में मानना चाहिए।

(२) क्षेत्र से परपना :

मूल : पर क्षेत्रे गत ज्ञेय ने जाणवे, पर क्षेत्रे थयुं ज्ञान, सुज्ञानी।
'अस्तिपणुं निज क्षेत्रे' तुमे कह्यो,
'निर्मलता गुमान?' सुज्ञानी ॥४॥

शब्दार्थ : पर क्षेत्रे-दूसरे स्थान में, ज्ञेय ने-जानने योग्य पदार्थ को, जाणवे-जानता है, अस्तिपणुं-अस्तित्व, विद्यमानता, निर्मलता गुमान-पवित्रता, स्वतंत्रता का गर्व, गौरव।

भावार्थ : अन्य क्षेत्र में रहे हुए जानने योग्य पदार्थ को जानना अर्थात् ज्ञान भी अन्य क्षेत्र में हुआ। किन्तु हे सुज्ञानी, जिनेश्वर देव आपने तो स्व क्षेत्र में अस्तित्व होने का (विद्यमानता) कथन किया है। यहीं स्वक्षेत्र की स्वतंत्रता का गौरव है। फिर ज्ञान पर क्षेत्र में तो कैसे हो सकता है? क्योंकि पर क्षेत्र में स्वपना नहीं परपना है। और एकपने का अभिमान रखनेवाले को अनेकपने में होना पड़ता है।

(३) काल से परपना :

मूल : ज्ञेय विनाशे हो ज्ञान विनश्वरू काल प्रमाणे रे थाय, सुज्ञानी।
स्व काले करी स्व सत्ता सदा,
ते पर रीते न जाय, सुज्ञानी ॥५॥

शब्दार्थ : ज्ञेय विनाशे-जानने योग्य पदार्थ के नष्ट होने से, विनश्वरू-नाशवान।

भावार्थ : काल के परिवर्तन अनुसार भूत, वर्तमान व भविष्य में जानने योग्य पदार्थों के नष्ट होते रहने से ज्ञान को भी नाशवान माना जाना चाहिए। पर सम्पूर्ण ज्ञान तो भूत, भविष्य व वर्तमान तीनों कालों को सम्पूर्ण रूप में जाननेवाला कहा गया है फिर आत्म द्रव्य स्वकाल में रहते हुए, स्व सत्ता में रहते हुए, पर रूप में परिणमन पाये बिना तीनों कालों के ज्ञेयों को जानता है, यह परस्पर विरोधाभास है।

(४) भाव से परपना :

मूल : पर भावे करी परता पामतां, स्व सत्ता थिर ठाण, सुज्ञानी।
आत्म चतुष्कमयी परमां नहि,
तो किम सहुनो रे जाण? सुज्ञानी ॥६॥

शब्दार्थ : पर भावे करी-स्वयं के सिवाय अन्य भावों की अपेक्षा से, परता-परपना, पामतां-प्राप्त करते हुए, थिर ठाण-स्थिर स्थान, आत्म चतुष्कमयी-आत्मा के चार (द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव) रूप।

भावार्थ : जो आत्म द्रव्य पर भावों का ज्ञान प्राप्त करता है तो ज्ञान पर-भाव मय होने से स्वाभाविक रूप से परपना पाता है। जब कि स्वभावों में स्थिर स्थान करना यही स्व सत्ता है। पर भाव मय होने से स्व सत्ता रहती नहीं है।

इस प्रकार से (द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव) चार रूपमय आत्मा स्व स्वरूप में है, पर रूप में नहीं। तो किस प्रकार से अन्य सर्व पदार्थों की जाननेवाली बनती है।

मूल : अगुरु लघु निजगुण ने देखतां, द्रव्य सकल देखंत सुज्ञानी।
साधारण गुणनी साधर्म्यता, दर्पण जल दृष्टान्त सुज्ञानी ॥७॥

शब्दार्थ : अगुरु लघु-अ-गुरु-लघु पर्याय षट्गुण हानि व वृद्धि रूप, साधारण गुण-सर्व सामान्य गुण, साधर्म्यता-समान धर्मता, समान गुणवत्ता, प्रत्येक द्रव्य में जो जो गुण धर्म एक समान हो, दृष्टान्त-उदाहरण।

भावार्थ : स्तवनकार श्री ने उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर प्रस्तुत करते हुए कहा है कि जैसे दर्पण व जल में किसी भी पदार्थ के प्रतिबिम्बित होने की समान गुणता, समान धर्मता है इसी प्रकार से जगत् के समस्त पदार्थों में साधारण गुणों की समान धर्मता विद्यमान है। आत्म द्रव्य स्वयं के अगुरु लघु पर्याय गुण को सम्पूर्ण ज्ञान से जान सकता है। वैसे ही सम्पूर्ण जगत् के समस्त द्रव्यों को देखता है।

(१) आत्मा स्वयं के सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावों को स्वयं के सम्पूर्ण ज्ञान से जान सकता है। इससे परपना प्राप्त नहीं होता है। स्वसत्ता कायम रहती है। यही अस्तित्व पना है।

(२) आत्मा में परपदार्थों के चारों गुण विद्यमान नहीं हैं अर्थात् उनका नास्तित्वपना है। जिसे भी आत्म द्रव्य स्वयं के सम्पूर्ण ज्ञान से जान सकता है।

(३) स्वयं के गुणों के अस्तित्वपने व अन्य के गुणों के नास्तित्वपने से ही प्रत्येक पदार्थ अलग अलग भासित है।

(४) जैसे स्व में पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव नहीं है, वैसे ही स्व में स्व के ही दूसरे प्रकार के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव नहीं होते हैं। जैसे एक ही आत्मा जीवन जीते हुए बालपना, जवानी, बुढ़ापा में अलग-अलग प्रकार के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में होता है। वर्तमान में भूत व भविष्य के गुणों का अभाव होता है।

(५) कोई भी एक गुण के स्व पर्याय दूसरे गुण की अपेक्षा से पर पर्याय है और एक एक गुण के अनन्त पर्याय होते हैं।

(६) इस प्रकार अस्तित्व व नास्तित्व दोनों पर्यायों का अस्तित्व प्रत्येक पदार्थ में होता है।

(७) अतः आत्मा स्वयं के पर्यायों का अस्तित्व व पर पर्यायों का नास्तित्व जानता है, तभी स्वयं को सम्पूर्ण रूप में जान सकता है।

सम्पूर्ण जगत् में स्थित साधारण साधर्मिकता से स्वयं को सम्पूर्ण रूप में जाननेवाला केवलज्ञानी आत्मा ज्ञान बल से सम्पूर्ण जगत् को जान सकता है।

मूल : श्री पारस जिन पारस रस समो, पण इहाँ पारस नाहि, सुज्ञानी।
पूरण रसियो हो! निज गुण,
परसन्नो आनन्द-घन मुज माहि, सुज्ञानी ॥८॥

शब्दार्थ : श्री पारस जिन-श्री पारसनाथ जिनेश्वर प्रभु, पारस-पारस पत्थर, पारस रस समो-पारस पत्थर के समान गुण युक्त, पूरण रसियो-सम्पूर्ण पने में, गुणों से भरपूर, परसन्नो-प्रसन्न, आनन्दित।

भावार्थ : पारस पत्थर के स्पर्श से लोहा सोने में परिवर्तित हो जाता है, उसी प्रकार श्री पार्श्वनाथ जिनेश्वर देव के सम्बन्ध में आनेवाला आत्मा भी प्रभु की तरह ज्ञानमय हो जाता है।

पर पारस तो जड़ पत्थर है जब कि श्री पार्श्वनाथ प्रभु सम्पूर्ण गुण रस से भरपूर, स्वगुणों से पूर्ण प्रसन्नतामय व आनन्दमय है।

इससे मुझे (साधक आत्मा को) भी प्रभु के सम्बन्ध में आभास होता है कि मुझमें भी आनन्द समूह मय पूर्ण रसिक आत्मा स्वगुणों से व प्रसन्नता से पूर्ण रूप में विद्यमान है।

२४ श्री महावीर जिन स्तवन

चौदहवें अयोगी नामक गुणस्थानक पर पहुँचे परम आत्मा का पूर्ण क्षायिक वीर्य का प्रकटीकरण, आत्मिक वीर्य का सुंदर स्वरूप। इस स्तवन में दर्शाया है।

मूल : वीरजीने चरणे लागुं, वीरपणुं ते मागुं रे।
मिथ्या मोह तिमिर भय भाग्युं, जित नगारूं वाग्युं रे ॥वीर०॥१॥

शब्दार्थ : चरणे लागु-चरण स्पर्श करूं, नमन करूं, मिथ्या-असत्य, मोह-मोहादि कषाय, तिमिर-अंधकार, भाग्युं-भंग हुआ, नष्ट करना, जित नगारूं-विजय भेरी, वाग्युं-बजी।

भावार्थ : श्री महावीर नामक चौबीसवें तीर्थंकर प्रभु के चरणों में नमन करके मैं उनसे आत्मवीरता की याचना करता हूँ। जिस वीरता से असत्य, कषाय व अज्ञानान्धकार आदि भय नाश होते हैं तथा कर्म शत्रुओं पर विजय का डंका बज जाता है।

मूल : छउमत्थ वीर्य लेश्या संगे, अभिसंधिज मति अंगे रे।
सूक्ष्म स्थूल क्रियाने रंगे, योगी थयो उमंगे रे ॥वीर०॥२॥

शब्दार्थ : छउमत्थ-छद्मस्थ- छद्म-कपट, अज्ञान, छद्मस्थ-अज्ञान से घिरा हुआ, आत्मा केवल ज्ञान प्राप्त न करे तब तक जीव छद्मस्थ कहलाता है, वीर्य-बल, वीरता, लेश्या-कृष्णादिक द्रव्यों के सहयोग से आत्मा में उत्पन्न होते भिन्न-भिन्न भाव, मानसिक अवस्थायें, संगे-संग से, संबंध से, अभिसंधिज-निमित्त प्रयत्न से उत्पन्न (शरीर में निद्रावस्था में भी, जो भी प्रवृत्ति सतत चलती रहती है उसे अनभिसंधिज योग कहते हैं तथा जो प्रवृत्ति हम इच्छा पूर्वक करते हैं मन,वचन, काया में प्रयत्न पूर्वक जो प्रवृत्ति होती है उसे अभिसंधिज योग कहा जाता है) मति अंगे-बुद्धि प्रमाणे, सूक्ष्म-स्थूल-बारीक व बड़ी, क्रिया-आत्मा की प्रवृत्ति, रंगे-लीन होकर, निमग्न होकर, योगी-मन, वचन, काया के योगवाला जीव।

भावार्थ : इस स्तवन में योग शब्द के दो अलग-अलग अर्थ जानने योग्य है। (१) मन, वचन, काया की प्रवृत्ति (२) मोक्ष की तरफ ले जाने वाली आध्यात्मिक प्रवृत्ति के अलग-अलग पद-धर्माचरण, ध्यान, संयम।

छद्मस्थ जीव स्वयं के बल के अनुसार लेश्याओं-मानसिक अवस्थाओं भावों के संबंध से प्रयत्नपूर्वक बुद्धि प्रमाण में सूक्ष्म व स्थूल क्रियाओं में आसक्त होकर, भावमय होकर, उमंग से योगी अवस्था को प्राप्त करे, योगमय हों!

सूक्ष्म व स्थूल क्रिया के रंग से योगवंत बना हुआ आत्मा संसार में उमंगवंत

हो रहा है।

छद्मस्थ जीवों के वीर्यान्तराय कर्म के नाश से जो लब्धि उत्पन्न होती है उसे 'अभिसंधिज वीर्य' कहते हैं। केवल ज्ञान सिद्ध भगवंतों को क्षायिक वीर्य कहा जाता है।

मूल : असंख्य प्रदेशे वीर्य असंख्ये, योग असंख्यित कंखे रे।
पुद्गल गण तेणे ले सु विशेषे,
यथा शक्ति मति लेखे रे ॥वीर०॥३॥

शब्दार्थ : प्रदेशे-आत्मा के प्रदेश, कंखे-इच्छा करना, मानना, तेणे-उसे, ले-ग्रहण करे, सुविशेषे-विशेष प्रकार से, यथाशक्ति मति लेखे-जैसी शक्ति व जैसी बुद्धि के हिसाब से।

भावार्थ : आत्मा के असंख्यात् आत्म प्रदेश हैं। प्रत्येक आत्म प्रदेश में असंख्य असंख्य वीर्य के अंश हैं। ये समस्त आत्म प्रदेश मिलकर समूह रूप में असंख्य योग स्थान (शास्त्रों में) माने गये हैं।

इन योग स्थानकों के बल की शक्ति व मन की प्रकृति अनुसार पुद्गलों के समूह को आत्मा ग्रहण करती है अर्थात् योग स्थानक आत्मा में नये नये कर्म बंधाते हैं जिससे निरन्तर पुद्गल समूह आते ही रहते हैं।

मूल : उत्कृष्टे वीर्य निवेशे, योग क्रिया नवि पेसे रे।
योग तणी ध्रुवताने लेशे, आतम शक्ति न खेसे रे ॥वीर०॥४॥

शब्दार्थ : योगक्रिया-मन, वचन, काया के योग की प्रवृत्ति, पेसे-प्रवेश करे, ध्रुवता-स्थिरता, दृढ़ता, खेसे-खिसकना।

भावार्थ : जब आत्म वीर्य सर्व श्रेष्ठ रूप में हो, तब मन, वचन, काया की योग प्रवृत्तियाँ प्रवेश प्राप्त नहीं कर सकती हैं। अर्थात् आत्मा ज्यों-ज्यों ऊंचे गुण स्थानकों को प्राप्त करती है, त्यों-त्यों तीनों योग चंचलता रहित होते हैं। तथा योगों के स्थिर होने से आत्म वीर्य, आत्मा का ओज, आत्म शक्ति बढ़ती है, खिसकती नहीं है।

उत्कृष्ट वीर्य को योग असर नहीं कर पाते हैं तथा ज्यों ज्यों योग स्थिर होते जाते हैं आत्म शक्ति भी उत्कृष्ट रूप में स्थिर होती जाती है। आत्मा की चंचलता नष्ट हो जाती है। पुद्गल व आत्मा भिन्न भिन्न द्रव्य रूप में अलग हो जाते हैं, नवीन कर्म बंधन नहीं होता।

मूल : काम वीर्य वशे जिम भोगी, तिम आतम थयो भोगी रे।
शूर पणे आतम उपयोगी, थाय तेह अयोगी रे ॥वीर०॥५॥

शब्दार्थ : काम वीर्य-काम भोग में उपयोगी शारीरिक वीर्य, भोगी-भोक्ता,

उपभोग करनेवाला, शूरपणे-वीरता में, आतम उपयोगी-आत्मा में उपयोगवंत, अयोगी-मन, वचन, काया के योगों से रहित, चंचल योगों से रहित।

भावार्थ : शारीरिक वीर्य के वशीभूत जैसे आत्मा भोगी बनता है वैसे ही सांसारिक वीर्य के वशीभूत आत्मा भी संसार के सुख-दुःखों का भोक्ता बनकर संसार चक्र में भटकता रहता है।

पर उत्कृष्ट आत्मा स्वयं के शूरवीरपने से उपयोगवंत होकर अक्षय आत्मिक वीर्य से वीर्यान्तराय कर्म का नाश करके चौदहवें अयोगी गुण स्थान को प्राप्त करता है।

वीर्य का अर्थ अलग अलग प्रकार से निम्नानुसार समझें :-

(१) शरीर में रस, रक्त, मांस, चरबी, हड्डी, मज्जा व वीर्य रूप में बनती सातवीं धातु शारीरिक वीर्य।

(२) मन, वचन, काया के योग से भोगा जानेवाला आत्मा का बल, जिससे कर्म बांधे जाते हैं। तथा संसार में भोगावली कर्म चलता रहता है ऐसा सांसारिक वीर्य।

(३) तीनों योगों के निर्बल होने से, वीर्यान्तराय कर्म के क्षय से, प्रकट होता अक्षय आत्मिक वीर्य-शैलेशी वीर्य या क्षायिक वीर्य।

प्रथम वीर्य काम भोगी बनाता है, दूसरा संसार भोगी बनाता है जबकि क्षायिक वीर्य आत्मा को अयोगी बनाकर मुक्त व स्थिर बनाता है।

मूल : वीर पणुं ते आतम ठाणे, जाण्युं तुमची वाणे रे।
ध्यान विन्नाणे शक्ति प्रमाणे, निज ध्रुव पद पहिचाणे रे॥वीर०॥६॥

शब्दार्थ : वीरपणुं-वीरता, ठाणे-स्थान पर, जाण्युं-जानना, तुमची वाणे-आपकी वाणी से, आपके उपदेश से, आपके द्वारा प्ररूपित धर्म से, ध्यान विन्नाणे-ध्यान के विज्ञान से, ध्यान के शास्त्रीय ज्ञान से, शक्ति प्रमाणे-शक्ति अनुसार, निज-स्व, स्वयं का, ध्रुव पद-ध्रुवता, स्थिर पद, शाश्वत निवास, मोक्ष।

भावार्थ : वीरता का निवास आत्म स्थान ही है। यह तथ्य आपकी (जिनेश्वर की) वाणी से ही जगत् ने जाना है। स्वयं की शक्ति अनुसार शास्त्रीय ज्ञान के आधार पर ध्यान में आगे बढ़ने से ही आत्मा स्वयं की ध्रुवता को पहिचानता है, और क्रमशः मोक्ष पद को प्राप्त करता है।

मूल : आलम्बन साधन जे त्यागे, पर परिणति ने भागे रे।
अक्षय दर्शन ज्ञान वैरागे, आनन्द-घन प्रभु जागे रे ॥वीर०॥७॥

शब्दार्थ : आलम्बन-सहारा, अवलंब, परपरिणति-पर रूप में परिणमना, भागे-भगाना, भंग करना, नष्ट करना, अक्षय-अखूट, क्षायिक, अनन्त, वैरागे-चारित्र,

आनन्द घन-अनंत वीर्य के आनन्द समूह रूप, जागे-सदैव जाग्रत रहे, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी व शैलेशी अवस्था रूप सदैव जाग्रत।

भावार्थ : जो आत्मा अवलंबन रूप-मन, वचन, काया रूपी साधनों का त्याग करे, वह पर रूप परिणति का नाश करता है। अर्थात् स्व स्वरूप को प्राप्त करता है। अखूट, क्षायिक, अनन्त दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्राप्तकर अनन्त वीर्य के आनन्द समूह रूप, सिद्ध परमात्मा रूप, स्व स्वभाव में रमण करता हुआ सदैव जाग्रत रहता है। सिद्ध परमात्म-रूप अरूपी, दिव्य आत्मा सदा आत्म ज्योति से दैदिप्यमान रहता है।

चौथे गुणस्थानक की प्राप्ति पर मिथ्यात्व राग चला जाता है। पाँचवें व छट्ठे गुणस्थानक पर अविरति, सातवें पर प्रमाद, आठवें पर बाह्य धर्मानुष्ठान, गयारहवें गुणस्थानक पर सामर्थ्य योग के बल से कषाय पर परिणतियाँ नाश पाती हैं। बारहवें गुणस्थानक पर मोहरूप, तेरहवें गुणस्थानक पर छद्मस्थ भाव रूप पर परिणति का अभाव होता है।

चौदहवें गुणस्थानक को प्राप्त करने पर पहले कायादिक योग रूप पर परिणति चली जाती है। अन्त में मोक्ष प्राप्त होने पर उदय में शेष रहे अन्तिम कर्मो रूप पर परिणति चली जाती है।

इस प्रकार आत्मा के विभाव-स्वभाव से उत्पन्न समस्त पर परिणतियाँ सदैव के लिए निःशेष हो जाती हैं।

- जो आत्मा स्त्रियों में विषय वासना से ग्रसित होकर आसक्त हो जाता है। उस आत्मा में विवेक, वैराग्य, पांडित्यता, सदाचरण रूप संयम, इन्द्रियों पर काबू यह सब प्रवृत्ति होते हुए भी अल्प समय में चली जाती है। स्त्री वश में आत्मा नहीं होता तभी तक ये प्रवृत्तियाँ रहती हैं। ये शुभ प्रवृत्तियाँ चले जाने पर आत्मा विषयासक्त होकर भीषण अशुभ क्रूर कर्म उपार्जन कर लेता है और ऐसा कामासक्त व्यक्ति अज्ञानी होता है।

- जो आत्मा संसार के सुखों को, विपुल भोग सामग्री को, नरकादि दुर्गतियों के कष्टों को देनेवाली समझकर एवं मानकर आयुष्य के अन्तिम दिन में एक दिन का सर्व विरति पना स्वीकृत कर ले, एवं भवितव्यता परिपक्व हो गयी हो तो मोक्ष पा लेता है। कदाचन् मोक्ष न हो तो वैमानिक देवलोक में अवश्य जाता है।

"समाधान की ज्योत"

Mesco Prints
080-22380470